वर्ष १०, अंक ५

श्रीकृष्णाय नमः

फरवरी

फाल्गुण १९९२

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	१२५
२.	पुराण-गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	१२६
३.	श्यामली-मूर्ति [रचयिता श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा' हटा (दमोह) सी० पी० ...	१३०
४.	योग साधन [ले०-श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	१३१
५.	प्रह्लाद-प्रबोध (दुर्गाप्रसाद गुप्त)	१३५
६.	रामाष्टकम् ले० श्री स्वर्गीय पं० गोवर्द्धनजी शर्मा विद्याभूषण	१३६
७.	सनकी शंकर [रचयिता श्री गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु'	१३८
८.	श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी और उनके श्रीराधारमणलाल [ले० श्रीयुत् मथुराप्रसाद जी मुख्त्यार	१३९
९.	विधि-विधान [रचयिता श्री महाकवि पु० प्रतापनारायण जी जयपुर	१४६
१०.	पुनर्जन्म [ले० श्री यमुनाप्रसाद जी वास्तव नृसिंहपुर	१४७
११.	चेत [रचयिता-श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भग० भ० आश्रम	१५०
१२.	सत्संग सभा (दुर्गा प्रसाद गुप्त)	१५१
१३.	भारतीय महात्मा श्री रांका बांका महाराज [ले० श्री माधवदास पुजारी राजपूताना ...	१५३
१४.	भजन	१५६

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
माई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर भंवरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	७)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	७)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जागृत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष १० } श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुन ता० १ फरवरी १९३५ { अंक ५ पूर्ण संख्या ११३

वेदोपदेश

याभि रंगिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

अंगिरा, अश्विनीकुमारों की स्तुति करो, अश्विद्वय, जिन उपायों से तुम लोग अन्तःकरण से प्रसन्न हुए थे, जिनसे पणि द्वारा अपहृत गौके प्रच्छन्न स्थान में सारे देवों से पहले गये थे और जिनसे अन्न देकर शूर मनुकी रक्षा की थी, अश्विद्वय, उन उपायों के साथ आओ।

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

जिन उपायों से विमद ऋषिको भार्या दी थी, जिनसे अरुण-वर्ण गायें प्रदान की थीं और जिनसे पिजवन-पुत्र सुदास राजाको उत्कृष्ट धन दिया था, अश्विद्वय उनके साथ आओ।

पुराणगाथा

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति

[ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी]

प्रह्लाद-हे विश्वेश्वर ! विश्व में जितने प्राणी हैं, वे सब आपकी आज्ञा का पालन करते हैं, इसलिये सब आपके भक्त ही हैं, अभक्त कोई नहीं है कोई आपका सतोगुणी भक्त है, कोई रजोगुणी भक्त है, कोई तमोगुणी भक्त है और कोई निर्गुणी भक्त है, इतना ही भक्तों में भेद है, नहीं तो भक्त सब हैं, हम असुर आपकी भक्ति वैर भावसे करते हैं, इसलिये हम तमोगुणी भक्त हैं, मनुष्य स्त्री पुत्रादिकी कामना से आपकी आराधना करते हैं, इसलिये वे रजोगुणी भक्त हैं, देवता आपकी निष्काम भाव से मोक्ष के लिये भक्ति करते हैं, इसलिये वे सतोगुणी भक्त हैं और ऋषिमुनि केवल आपकी भक्ति ही करते हैं, इसलिये वे निर्गुणी भक्त हैं। ब्रह्मादिक देवता हमारे समान वैरभाव से आपकी भक्ति नहीं करते किन्तु श्रद्धा से करते हैं, आपका यह अवतार विश्व के योग क्षेम के लिये है, भय उत्पन्न करने के लिये नहीं है। इसलिये हे ईश ! क्रोध को आप शान्त कीजिये। जिसके ऊपर आपने क्रोध किया था, वह तो मरही गया। बिच्छू और सर्पादि हिंसक जीवों के मरने से साधु भी मोद मानते ही हैं, क्योंकि हिंसक जीव दूसरे की हिंसा करते हैं, उस हिंसा से दूसरों को कष्ट होता है और उनको भी पाप लगता है, इसलिये हिंसकों का मरना उनके लिये और दूसरों के लिये भी हित रूप ही है। यदि आप कहें कि जब मेरे क्रोध से साधु भी प्रसन्न होते हैं, तबतो मुझे क्रोध न त्यागना चाहिये, तो सब लोगों को आनन्द प्राप्त हो चुका है अबतो वे आपके क्रोध की शान्ति के लिये प्रतीक्षा कर रहे इसलिये क्रोध शान्त करना चाहिये। यदि आप कहें कि मेरे क्रोध के त्यागने से उनको फिर भय उत्पन्न हो जायगा, इसलिये मुझे क्रोध त्यागना उचित नहीं है, तो यह बात नहीं है, क्योंकि आपका यह स्वरूप सबको अभय करने के लिये है, अबतो आपके इस स्वरूप का ध्यान करने से ही लोगों का भय दूर हो जायगा, तब क्रोध धारन करने की क्या आवश्यकता है, अबतो क्रोध त्यागना ही ठीक है।

हे निःशंकदेव ! यदि आप कहें कि तू ही डरता है, इसलिये क्रोध शान्त करने की प्रार्थना करता है, तो हे अजित ! यह बात नहीं है, मैं आपकी अत्यन्त लप लपाती हुई जिह्वा से नहीं डरता, आपके भयंकर मुखसे नहीं डरता, आपके सूर्य के समान चमकते हुए और जलते हुए नेत्रों

से नहीं डरता, आपके टेढ़े भृकुटियों से नहीं डरता, आपकी उग्र दाढ़ों से नहीं डरता, आपकी आंतों की माला से मुझे भय नहीं है, रक्त से भरे हुए आपके सटों से गले के बालों से भी मुझे किञ्चित् भय नहीं है, शंकु अस्त्र के समान आपके तीक्ष्ण कानों से भी मैं नहीं घबराता, आपके शब्द से दिशाओं के हाथी भयभीत होगये हैं, उस भय दायक शब्द से भी मुझे भय नहीं होता, शत्रुओं की छाती चीरने वाले आपके नखों से भी नहीं डरता किंतु हे कृपण वत्सल ! मैं तो संसार चक्र से डरता हूं इस संसार में जन्म मरण, भूक प्यास शोक मोह, आधि व्याधि आदि अनेक दुःख हैं, वह मुझसे सहे नहीं जाते। इस संसार चक्र में मैं अपने कर्मों के कारण से डालदिया गया हूं। इसमें से निकलने के लिये मुझे सिवाय आपके चरणों का सहारा लेने के अन्य कोई उपाय नहीं सूझता। जैसे भूखे को सिवाय भोजन के दूसरी वस्तु अच्छी नहीं लगती, इसी प्रकार मृत्यु से बचने के लिये मुझे आपके चरण कमल ही सुहाते हैं, अन्य कुछ नहीं सुहाता, आपके चरण प्राप्त होना यद्यपि बहुत ही दुर्लभ हैं, फिर भी जिसके ऊपर आपकी कृपा होजाय उसके लिये उन चरणों की प्राप्ति सुलभ है। हे देव ! ये चरण मुझे कब प्राप्त होंगे।

हे देव ! मैंने वृद्ध पुरुषों से सुना है कि ईश्वर का दास होजाने से ईश्वर के चरणों में प्रीति होजाती है, परन्तु मैं बहुत काल से अनेक योनियों में भटक रहा हूं और वहां अनेक कष्ट पाता रहा हूं, क्योंकि जहां २ जन्मा हूं वहां २ प्यारी वस्तुओं का वियोग और अप्रिय वस्तुओं का योग होता रहा है, वियोग और योग के कारण मैं सर्वदा जलता ही रहा हूं, कहीं मैंने शान्ति नहीं पाई। दुःख के दूर करने के अनेक उपाय भी करता रहा हूं, परन्तु उपाय करने पर भी मैंने दुःख ही पाया है, दुःख के दूर करने की औषधि मैं नहीं जानता क्योंकि देह के अभिमान से मैं मोहित होरहा हूं, इसलिये हे भगवन ! मुझ दीन पर दया करके आप मुझे अपना दास्य रूप योग बताइये। इस संसार की निवृत्ति और आपके चरणों में प्रीती की एक औषधि आपका दास्य ही है, अन्य कोई औषधि नहीं है, ऐसा मेरा निश्चय है, दास्य योग से ही मेरा दुःख दूर होगा, अन्य से नहीं होगा।

हे नृसिंह ! यदि आप कहें कि दास्य योग में प्रवृत्त होने पर भी पूर्वोक्त दुःखतो आवेंगे ही उनका तू कैसे परिहार करेगा ? तो हे देव ! जो हंस आपके चरण युगल रूप आलय में यानी घोंसले में रहते हैं अर्थात् आपके जो भक्त सर्वदा आपके चरणों का ही ध्यान करते रहते हैं, अन्य किसी संसारी वस्तु का स्वप्न में भी ध्यान नहीं करते, उन परमहंसों का मैं संग किया करूंगा, आपकी पावन कथायें जो ब्रह्मलोक में गायी जाती हैं, उन कथाओं को मैं उन परमहंसों के मुखसे सुना करूंगा, ऐसा करने से मैं महादुःखों से तरजाऊंगा यानी उनको गिनूंगा ही नहीं, क्योंकि सत्पुरुषों का संग करने से और आप परम प्रिय परमदेवता की लीला कथायें सुनने से मुझे रागद्वेष आदि द्वन्द्व दबा न सकेंगे। भाव यह है कि आपके अनुग्रह से सन्त महात्माओं का संग होगा, सत्संग से मैं राग द्वेष रहित हो जाऊंगा, राग द्वेष रहित होने से आपके गुणों का वर्णन करूंगा और गुणों का वर्णन करने से दुःखों को दबालूंगा, इस प्रकार संसार समुद्र से सहज ही पार होजाऊंगा।

हे नृसिंह ! यदि आप कहेंकि दुःखों के निवृत्त करने के उपाय लोक में प्रसिद्ध हैं तो फिर मेरे दास्य आदि की क्या आवश्यकता है, उन उपायों से दुःख दूर हो जांयगे, तो यह बात नहीं है, क्योंकि जो भाग्यहीन आपसे विमुख होकर दुःखों के दूर करने का उपाय करते हैं, उनके दुःख क्षणभर के लिये भले ही दूर होजांय, सर्वदा के लिये दूर नहीं होते और जो भाग्यशाली दास्य भाव से आपकी शरण में आते हैं, उनके दुःख सर्वदा के लिये दूर हो जाते हैं। देखिये, बालक के माता पिता रक्षक हैं, वे बालक की सर्वदा रक्षा करते हैं, फिर भी वे बालक की रक्षा नहीं कर सकते, उनके रक्षा करने पर भी बालक दुःख पाता रहता है और कभी मर भी जाता है, इसलिये मातापिता बालक की सर्वथा रक्षा नहीं कर सके ! रोगी की औषधि रक्षक है, परन्तु औषधि करने पर भी रोगी निरोग हो होजाय, ऐसा नियम नहीं है, औषधि करने पर भी रोगी मरजाता है, इसलिये औषधि रोगी की सर्वथा रक्षा नहीं कर सकती ! समुद्र में डूबते हुए की रक्षा करने वाली नाव है परन्तु नाव होते हुए भी मनुष्य डूबते हुए देखने में आते हैं, इसलिये डूबने वाले की नाव सर्वथा रक्षा नहीं कर सकती ! अन्य भी दुःख की निवृत्ति के उपाय हैं परन्तु जिसकी आप उपेक्षा करदेते हैं, वे उन उपायों से दुःख की निवृत्ति नहीं कर सकते और जिनकी आप उपेक्षा नहीं करते किंतु सर्वदा सहाय करते हैं, वे उपाय न करने पर भी सुरक्षित रहते हैं। बगीचे में सींचते २ भी वृक्ष सूख जाते हैं और पर्वतों पर बिना सींचे हुए भी हरे भरे रहते हैं। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है, इसलिये जिन पुण्य शालियों ने आपका दास्य स्वीकार कर लिया है, वे ही सर्वदा के लिये दुःखों से मुक्त होजाते हैं। अन्य नहीं होते।

हे अखिलेश्वर ! यदि आप कहें कि कहीं, कोई, कभी, किसी प्रकार रक्षा करने वाले देखने में आते ही हैं, मैं किसीको रक्षा थोड़ा ही करता हूं, कोई दूसरा ही रक्षा करता है, मुझे किसी ने आज तक किसी की रक्षा करते हुए देखा भी नहीं है, तो यह बात नहीं है, आपही सबकी रक्षा करते हैं, कोई दूसरा किसी की रक्षा नहीं करता, जो २ रक्षा करता है, उस २ का रूप आप ही बनजाते हैं, इसलिये आपही रक्षा करने वाले हैं, दूसरा नहीं है, क्योंकि जिसमें, जिससे, जो जिसके द्वारा, जिसका जिसमें से, जिसके लिये, जिस प्रकार, जो कोई कार्य करता है, छोटा हो अथवा बड़ा हो, वह सब आपका ही स्वरूप है, भाव यह है कि कर्ता, कर्म करण, संबंध, संप्रदान अपादान, अधिकरण ये सातों आपही हैं, आपके सिवाय कुछ नहीं हैं, इसलिये सर्व रूपों से आपही रक्षा करते हैं यानी जहां कहीं, जब कभी, जिस रूपसे और जिस प्रकार से रक्षा की जाती है, आपही करते हैं, अन्य कोई नहीं करता।

हे देव ! आप असंसारी हैं। नित्यमुक्त हैं, आपके सिवाय दूसरा रक्षक नहीं। आपका अंश रूप पुरुष ईक्षण यानी अवलोकन करता है, अवलोकन रूप अनुग्रह से काल उत्पन्न होता है, काल से माया के सत्व आदि गुणों में क्षोभ होता है, गुणों में क्षोभ होने से मन उत्पन्न होता है। यह मन वेद में कहे हुए अनन्त कर्मों की वासना वाला होता है, सोलह विकारों से युक्त होता है, इसका दूसरा नाम लिंग शरीर है, यह ही संसार रूप चक्र है, यह संसार चक्र रूप मन कठिनाई से जीता जाता है अथवा यों कहना चाहिये कि आपकी भक्ति बिना

इस मनको कोई जीत नहीं सकता, एक आपकी अनन्य भक्ति ही इस मनके जीतने का उपाय है, इसलिये आपसे मैं अपनी रक्षा करने के लिये प्रार्थना करता हूं। आपही रक्षा करेंगे, तो मैं इस संसार से तर सकता हूं। अन्य उपाय से नहीं तर सकता।

हे मायाधीश! यदि आप कहें कि जैसे तेरा माया से संबंध है, इसलिये तुझमें और मुझमें भेद नहीं है, तो यह बात नहीं है, मुझमें और आपमें दिन रात के समान महान् अन्तर है, क्योंकि आपने अपनी चित्तशक्ति से बुद्धि के गुणों को नित्य ही जीत लिया है, मैं बुद्धि के गुणों के वश में हूं, उनसे हारा हुआ हूं। काल आपके वश में है, मैं काल के अधीन हूं। आपने विषय भोगों को और साधनों को छोड़ दिया है, मैं विषय भोगों को भोगता हूं। साधन भी कर रहा हूं सोलह आरे वाले चक्र में पड़ा हुआ गन्ने के समान पेला जारहा हूं। हे विभो! उस चक्र में से निकाल कर मुझे अपने समीप बुलाइये। आप स्वतंत्र हैं, मैं परतंत्र हूं, कुछ नहीं कर सकता, स्वतंत्र ही परतंत्र का उद्धार कर सका है। (पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच प्राण और एक मन यह सोलह आरे हैं।)

हे कालेश्वर! यदि आप कहें कि लोकपालों के भोगों को भोग और अपने पिता के राज्यासनपर बैठकर त्रिलोकी का राज्य कर, तो हे भगवन्! मैं ने स्वर्ग में संपूर्ण लोकपालों की आयु, लक्ष्मी और वैभव को देखा है, मूढ पुरुष ही उनकी इच्छा करते हैं, क्योंकि ये सब मेरे पिता की भ्रकुटी हिलाने से ही नष्ट भ्रष्ट होगये थे, मेरे पिता के भय से कोई उनको भोगने में समर्थ न था! जब मेरे पिताको आपने मारडाला है, तब स्वर्गवासियों का कष्ट निवृत्त हुआ है, और वे सुखी हुए हैं, ऐसे तुच्छ और पराधीन स्वर्ग के भोगों को भोग कर मैं क्या करूंगा। नश्वर भोगों की इच्छा करना और उनको प्राप्त करना मूर्खता ही है। जो आप ही नश्वर हैं, वे दूसरों को सुख नहीं दे सकते। मैं तो आपके चरणों की प्राप्ति ही चाहता हूं, अन्य कुछ नहीं चाहता, उन्हीं को प्राप्त करके मैं सुखी होऊंगा, अन्य प्रकार सुखी नहीं हो सकता।

हे कालात्मन्! आपकी शरण में आये बिना करोड़ों वर्षोंतक भी भोग भोगने से कोई तृप्त नहीं हो सका, इसलिये मैं इन्द्र से लेकर ब्रह्मा के आयु, लक्ष्मी और ऐश्वर्य को भी नहीं चाहता, क्योंकि इन सबको आप काल रूप एक न एक दिन नष्ट करदेते हैं, मुझे तो आप अपने भक्तों के समीप ले जाइये, जहां कि मैं आपके हंस रूप भक्तों के मुखसे निकला हुआ आपका कथामृत रूपरस पिया करूं। और उसी का गान किया करूं। जितने भोग हैं, सब मृग तृष्णा के जलके समान हैं, जैसे मृग तृष्णा के जलसे किसी की आजतक प्यास नहीं बुझी न बुझेगी, इसी प्रकार भोगों से किसी की तृप्ति आज तक न हुई और न होगी। जैसे भोग नश्वर हैं, इसी प्रकार यह शरीर भी रोगों का घर है, कभी रोगों से रहित नहीं होता, सर्वदा आधि व्याधि आदि अनेक रोगों से छाया हुआ रहता है, इस बात को मनुष्य जानता है, तो भी काम रूप अग्नि को कठिनाई से प्राप्त होने वाले, क्षण भंगुर भोगों से शान्त करना चाहता है, इसका मुझे बहुत ही शोक है।

हे ईश ! यदि आप कहें कि जब सभी मनुष्य भोगों में आसक्त हैं, तब तुझे कैसे वैराग्य होगया तो इसका उत्तर यह है कि यह सब आपका ही अनुग्रह है ! नहीं तो कहां मैं जो रजोगुण से युक्त अधिक तमोगुण वाले राक्षस कुलमें उत्पन्न हुआ और कहां अनुकंपा क्योंकि जिस आपके कर कमल के प्रसाद को ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी भी चाहती रहती है। उसी कर कमल को आपने मेरे शिर पर रखदिया है यह मेरा अहोभाग्य है, आपका ऐसा करना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि जैसे 'ये ब्रह्मादि उत्तम हैं, असुर नीच हैं' ऐसी बुद्धि प्राकृत मनुष्यों में होती है, ऐसे आप में नहीं होती, क्योंकि आप कल्प वृक्ष के समान हैं, जैसे कल्पवृक्ष अपनी सेवा करने वालों को उनकी सेवा के अनुसार फल देता है, बड़ा छोटा नहीं देखता, इसी प्रकार आप सबको उनकी सेवा के अनुसार फलदेते हैं, उत्तम अधम नहीं देखते ! यह बात मुझे आपके भक्त नारद जी के प्रताप से मालूम हुई है। भाव यह है कि जैसे आपने मेरे ऊपर कृपा की है इसी प्रकार आपके सेवक नारद जी ने मेरे ऊपर अनुकंपा की है। जिन आपके भक्त के द्वारा मुझे संसार के ताप और संसार के तापों से छूटने का उपाय आपके चरण जानने में आये हैं, उन आपके भक्तों को मैं कैसे छोड़ सका हूं। इसलिये उनके पास लेजाने को मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। आपके भक्तों के सिवाय कोई दूसरा संसार समुद्र से पार नहीं कर सका, इसलिये मनसे, तनसे और वाणी से मैं उन्हीं की सेवा करना चाहता हूं। अन्य को नहीं चाहता। !

पाठक ! आगे की प्रहलाद की करी हुई स्तुति आगे के निबंध में दिखलायेंगे। यहां तो इतना कह कर ही लेख की समाप्ति करते हैं।

कुं—संतों की सेवा करे, निरुपम मेवा पाय।
विष्णु परमपद पायके, अजर अमर होजाय ॥
अजर अमर होजाय, कृष्ण जो निशदिन भजता।
मृग तृष्णा जल जान, विषय भोगों को तजता ॥
भोला ! संगति छोड़, भोग लंपट कुत्तों की।
सेवा कर दिन रात, कृष्ण सेवी संतों की ॥

❀ श्यामली-मूर्ति ❀

दुरमिल-छंद

[रचयिता श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा' हटा (दमोह) सी० पी०]

यह कान पै गाज भले ही परै, अबतो नहिं लाज सम्हारे बनैं ॥
हम प्रेम के सिंधु में डूबे 'रमा', कुल कानि पै पानिहु डारे बनैं ॥
छवि श्याम की मंजुल मूरति को, कल-कुंजन मांहि निहारे बनैं ॥
अबतो कोइ लाख कहै हमसों, उन्हें नैनन से न बिसारे बनैं ॥

योग साधन

[ले०—स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

११८७. संसार की समस्त आसक्तियों का छेदन करने के लिए वैराग से बढ़कर कोई तलवार नहीं है। सन्तोष से बढ़कर कोई भी शीतल पदार्थ नहीं है जिससे संसारी पुरुषों की लालच रूपी अग्नि शान्त हो सके।

११८८ अज्ञानी पुरुषों के अज्ञान को नष्ट करने के लिए और जिज्ञासुओं को ब्रह्म समाधि में स्थिर करने के लिए ब्रह्मचर्य साधन से बढ़कर कोई औषधि नहीं है।

११८९. क्रोध रूपी अग्नि को शान्त करने के लिए शान्ति से बढ़कर कोई शान्तशरबत नहीं है।

११९०. जन्म जन्मान्तर के शत्रु अहंकार को नाश करने के लिए आत्मिक विचार से श्रेष्ठ कोई और उपाय नहीं है।

११९१. मनकी अविद्या को नाश करने के लिए आत्म-ज्ञान रूपी प्रकाश से बढ़कर अन्य कोई प्रकाश नहीं है।

११९२. उस जितेन्द्रिय योगी से बढ़कर शक्ति शाली कोई भी पुरुष नहीं है जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों पर अधिकार कर लिया है।

११९३ तीनों लोकों में उस सन्त से बढ़कर कोई भी सुखी नहीं है जिसने काम और क्रोध को वश में कर लिया है।

११९४. पशु रूप इन्द्रियों को वश में करने से बढ़कर कोई भी तप नहीं है।

११९५. विक्षेप को दूर करने के लिए एकान्त में शान्ति से वास करने के अतिरिक्त कोई जादू की पुड़िया नहीं है।

११९६. चित्त को शुद्ध करने वाला जप से बढ़ कर अन्य कोई साधन नहीं है।

११९७. जिनके हृदय नाना प्रकार के पापों से सख्त होगए हैं, जो संशयात्मा, नास्तिक वज्र-हृदय पुरुष हैं उनके हृदय को संकीर्तन भक्ति से अधिक नम्र करने वाला कोई साधन नहीं है।

११९८. तुम्हारे चित्त में तीव्र और निरन्तर वैराग्य रहना चाहिए और यह वैराग्य सत्य और असत्य के विवेक से उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति होने पर ही अध्यात्म मार्ग में उन्नति होता है। बुद बुद के उफान के भान्ति भावों से कोई फल नहीं होता।

११९९. जो संसार को त्याग कर निवृत्ति मार्ग में आना चाहते हैं उनको चाहिए कि संसार में रह कर ही दो चार वर्ष अपनी तय्यारी करें। अपनी इन्द्रियों का संयम करना चाहिए और शरीर को दृढ़ और सहन शीलबनाना चाहिए। संन्यास के

नियमों का पालन करना चाहिए, नारद परिव्राजक उपनिषद् का अध्ययन करना चाहिए। जिसमें संन्यास के नियमों का विधान किया गया है इससे बड़ी सहायता मिलेगी।

१२००. कुण्डलिनी का जाग्रत करना बहुत कठिन नहीं है परन्तु इसका भृकुटी और सहस्रसार तक लेजाना बड़ा कठिन है। योग के जिज्ञासु के लिए बड़े सन्तोष और धैर्य की आवश्यकता है परन्तु तीव्र इच्छा शक्ति और इरादे वाले के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मिथ्या तुष्टी के कारण योग के जिज्ञासु साधन को बन्द कर देते हैं। जब उनको कुछ अनुभव और शक्तियां प्राप्त होजाती हैं तो वह भ्रम से यह समझ लेते हैं कि इमको पूर्णता प्राप्त होगई। यह बड़ी भूल है। पूर्ण आत्म साक्षात्कार या असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा ही अन्तिम ध्येय की प्राप्ति सम्भव है।

१२०१. वासना और प्राण मन रूपी वृक्ष के बीज हैं। एक के संयम से दूसरे का संयम आप ही हो जाता है।

१२०२. संसार से पार लगाने के लिए सत्संग से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। सत्संग द्वारा अभय और अमर पद की प्राप्ति होजाती है। चित्त को वश में करने के लिए त्यागसे बढ़कर कोई साधन नहीं है। त्याग द्वारा ही अमरत्व की प्राप्ति सम्भव है।

१२०३. मनकी राजस और तामस वृत्तियों को नष्ट करने के लिए, प्राणायाम से बढ़कर अन्य कोई शक्ति नहीं है।

१२०४. जिन संस्कारों के बीजों से जन्म और मृत्यु होती है उनको भस्मी भूत करने के लिए असम्प्रज्ञात समाधि की ज्ञानाग्नि से बढ़कर अन्य कोई अग्नि नहीं है।

१२०५. जिज्ञासुओं की प्यास को बुझाने के लिए और उनको सिद्धि और आनन्द देने के लिए भक्ति के माधुर्य रस से बढ़कर अन्य कोई रसायन नहीं है।

१२०६. योगियों के प्रशान्त चित्त से बढ़कर कोई वस्तु शान्त नहीं है। जहां से अमरत्व के रस की धारा बहकर जिज्ञासुओं के चित्त को शान्त करती रहती है।

१२०७ अध्यात्म-मार्ग में सहायता देने के लिए विवेक से बढ़कर कोई मित्र नहीं है।

१२०८. जब तुम किसी दूर स्थान की यात्रा करो तो इंड़ा नाड़ी के चलने पर आरम्भ करो और यात्रा की समाप्ति पिंगला (दाएं नाक) के चलते रहने पर करो।

१२०९. जब तुम्हारी सुषमना चलरही हो और तुमसे कोई प्रश्न करे कि 'मेरा पुत्र खोया गया है अथवा मेरी खोई हुई सम्पत्ति मिलेगी अथवा नहीं तो उत्तर 'नहीं' में दो।

१२१०. हरी का भक्त सदैव नम्र और सरल होता है और परमात्मा का नाम सदैव उसकी वाणी पर रहता है। वह एकान्त में आंसुओं की अजस्र धारा बहाता रहता है। वह बड़ा पवित्र रहता है और सबका मित्र होता है। वह किसी न किसी शुभ-कार्य में रत रहता है और समदृष्टि होता है, वह किसी का चित्त नहीं दुखाता, उसका आचरण श्रेष्ठ होता है और वह सर्वत्र हरी का दर्शन करता है।

१२११. आंख यद्यपि ज्ञान-इन्द्री है परन्तु इसे कर्म इन्द्री भी समझना चाहिए। जब मनुष्य की दृष्टि कामातुर होती है तो आंख द्वारा अशुभ कर्म होता है।

१२१२. आंखों द्वारा हम जगत् के पदार्थों को देखते हैं यह एक कर्म हुआ। आंख जिसकी हालत का दिग्दर्शन कराती है यह दूसरा कर्म हुआ।

१२१३. यद्यपि उपस्थ इन्द्री कर्मइन्द्री है परन्तु यह कुछ हदतक ज्ञान-इन्द्री का भी काम करती है। इसके द्वारा विषयानन्द का ज्ञान होता है।

१२१४. अधिक खाने वाले, अधिक बोलने वाले और अधिक किया करने वाले को आत्मा का ज्ञान नहीं होता। उसका मन बाह्य वृत्तियों में रमण करने वाला और बाह्य कर्मों में लगन वाला होता है। उसका चित्त रजोगुण से भरपूर होता है।

१२१५. परमात्मा तुम्हारे दिल व दिमाग पर आन्तरिक रूप से हकूमत करता है वह तुम्हारे विचारों का साक्षी है। उससे कोई बात छिपाई नहीं जा सकती। स्त्री अपने पति से शरीर के किसी भी अंग को छिपा नहीं सकती।

१२१६. अपमान, कटुवाणी और बुरे व्यवहार से दुःखी मत हो। उनको अपने शरीर का आभूषण समझकर स्वीकार करो।

१२१७. यह शरीर निश्चय करके तुच्छ भोगों के लिए नहीं बना है। यह इस जगत् में तपस्या करने के लिए और परलोक में, अनन्त आनन्द का भोग करने के लिए बनाया गया है। यह मनुष्य जन्म के आदर्श को पूर्ण करने कि लिए मिला है। यह ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए मिला है। यह संसार रूपी समुद्र के तरने के लिए नौका का काम देता है। पवित्र आत्माएं प्रकाशमान होकर वायुलोक से सूर्य लोक में होती हुई इन्द्र के साथ आकर मिल जाती हैं।

१२१८. शुभ कर्मों के कर्ता स्वर्ग लोक को जाते हैं, उपासना करने वाले ब्रह्म लोक को प्राप्त होते हैं, ज्ञानी किसी लोक विशेष को नहीं जाते वे सर्व व्यापक ब्रह्म में लीन होजाते हैं।

१२१९. संसार में मनुष्य-जीवन प्रलोभनों से घिराहुआ है, जिनको तीव्र वैराग और विवेक है वे संसारी प्रलोभनों में नहीं फंसते और वे शैतान या यार (मन) के वश में नहीं रहते।

१२२० यदि तुम दूसरों के लिए अधिक सोचते हो तो यह तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन के विकास और चित्त की शुद्धि का परिणाम है। अपने आध्यात्मिक जीवन में निरन्तर लगे रहो, इसी में कल्याण है।

१२२१. प्रकृति रूपी बड़ी पुस्तक को पढ़ो और सावधानी से उसका अध्ययन करो। वृक्षों के पत्ते तुमको बोलते सुनेंगे, नदी नाले पुस्तकों से भरे मिलेंगे, पत्थरों पर प्रार्थनाएं खुदी मिलेंगी, वायु भजन गाती सुनेगी, समुद्र स्तोत्र पढ़ते दिखाई देंगे, फूल मुस्कराते मिलेंगे और समस्त जगत् आनन्द मय प्रतीत होगा। प्रकृति ही तुम्हारा सबसे उत्तम शिक्षक है। प्रकृति के साथ मिलकर एक होजाओ फिर उसके पति की एकता आप प्राप्त होजावेगी।

दीवारें बन्दी गृह की बनाने वाली नहीं हैं,
लोहे की सलाखों से पिंजरा नहीं बनता,
शुद्ध और सरल चित्त ऐसे स्थानों को
भी ऋषियों का आश्रम समझते हैं॥

१२२२. मन ही सब कुछ है। मनही नरक का स्वर्ग बना देता है और स्वर्ग का नरक बना देता है। इस वानर रूपी मनको सावधानी से वश में रक्खो तब ही तुम वास्तविक सुख को प्राप्त होगे।

१२२३. राज्य प्राप्ति अच्छा काम है। बड़े २ उद्यान और ग्रीष्म में रहने योग्य सुन्दर पुष्प वाटिका रहने के लिये बड़ी अच्छी हैं। सुन्दर, पतली कमर और मृगनैनी कमल लोचन युवती

शक्तियों का सहवास भी कम लुभाने वाला नहीं है परन्तु ज्ञानी और वैरागी भर्तृहरी, बुद्ध और गोपीचन्द ने आत्मा का अनुभव करके इन वैभवों को तृणवत् त्याग दिया। कारण आत्मा का आनन्द ही सनातन, अव्यय और अविनाशी आनन्द देने वाला है।

१२२४. अजपा जाप करो, प्राण का नाद में समावेश होजावेगा और समस्त वृत्तियों का लोप होजावेगा।

१२२५. प्राणायाम में समाहित चित्त होजाओ। यदि प्राणायाम में तुम्हारी रुचि होजावे तो केवल कुम्भक का अभ्यास करो। गीता कहती है 'प्राणायाम परायणाः' अर्थात् प्राणायाम के आश्रित होजाओ। प्राणायाम करते समय बड़ी सावधानी से काम लो।

१२२६. त्रिवेणी उस स्थान का नाम है जहां गंगा, जमना और सरस्वती का संगम होता है। योग में इडा, पिंगला और सुषुमना के मिलने का नाम त्रिवेणी है।

१२२७. सच्चे साधु किस प्रकार मिलें इसकी पहचान भगवान कृष्ण ने भागवत् में बतलाई है। सन्त किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रखते, उनका चित्त भगवान में संलग्न रहता है, वे बहुत नम्र स्वभाव होते हैं, वे सम-दृष्टि होते हैं, वे किसी व्यक्ति या वस्तु में आसक्त नहीं होते। वे अहंता और ममता से दूर रहते हैं। वे हर्ष और शोक में समान चित्त रहते हैं। वे किसी से कुछ मांगते नहीं। वे सुख, दुःख और शरदी गरमी को सहन करते हैं। सब जीवों पर प्रेम स्वभाव रखते हैं। काम कांचन से दूर रहते हैं। वे पवित्र होते हैं, उनका कोई शत्रु नहीं होता। उनका आचरण अद्वितीय होता है।

१२२७. उच्च जिज्ञासुओं के लिए कुछ साधन बताए जाते हैं। जिनके द्वारा बड़ी शीघ्र और स्थाई उन्नति का होना सम्भव है। सवेरे ४ बजे उठो। उसी समय स्नान करलो या हाथ, मुंह और पांव धोकर किसी भी आसन से बैठकर जप आरम्भ करो। १४ घण्टे तक कुछ भी भोजन न करो, आसन से न उठो। यदि होसके तो आसन का परिवर्तन न करो। शाम को जप समाप्त करो। रात को दूध और फल खाओ। गृहस्थी आदमी अवकाश के दिन यह अभ्यास कर सकते हैं। यह अभ्यास सप्ताह में, पक्ष में या मास में एकबार किया जा सकता है।

१२२८. दश दिन का एक साधन है। यह बड़े दिन की छुट्टियों में पूजा की छुट्टियों में या गर्मी की छुट्टियों में किया जा सकता है। अपने आपको एक हवादार कमरे में बन्द करलो। न किसी से बात करो और न किसी को देखो। ४ बजे सवेरे उठो। गायत्री मंत्र या गुरु मंत्र का जाप आरम्भ करो और दिन छिपे तक करते रहो। शाम को थोड़ा, दूध या खीर खालो, एकदो घण्टे आराम करो परन्तु जप बराबर जारी रक्खो। बीच में आराम करके फिर उसी प्रकार बैठजाओ। रात को ११ बजे सो जाओ जपके साथ ध्यान भी करसकते हो। भोजन, स्नान सबका प्रबन्ध कमरे के भीतर ही करो। यदि होसके तो दो कमरों में प्रबन्ध करलो, एक में स्नान और दूसरे में भजन। यह अभ्यास वर्ष में बार बार करो। यह अभ्यास ३० या ४० दिन तक किया जा सकता है। इस अभ्यास से आश्चर्य जनक अनुभव प्राप्त होते हैं। इससे समाधि प्राप्त हो सकती है, यह मैं विश्वास से कहता हूं।

* प्रह्लाद-प्रबोध *

हे राम प्यारे ! तूही उबारे ॥

व्याकुल कम्हारी, गमगीन भारी, रोवे विचारी, मन तड़फड़ाता, तन थरथराता, रोका न जाता।
गद् गद् है बानी, आंखों में पानी, सूरत दिवानी, चक्कर लगाती माला फिराती, रोती हुकाती ॥

यह ही पुकारे—हे राम प्यारे ! तू ही उबारे ॥

(२)

देखे न भाले, तू ही बचाले ॥

आई है मुश्किल, गमगीन है दिल, अफसोस हिलमिल, बच्चे पड़े हैं, नाज़ुक बड़े हैं, कच्चे घड़े हैं।
जल जायेंगे सब, मां इनकी बेढब रोरो मरे तब, बिल्ली के प्यारे, बच्चे बिचारे, अग्नी में सारे ॥

हा ! मैंने डाले, देखे न भाले, तूही बचाले ॥

(३)

ममता की मारी, बिल्ली दुखारी ॥

बे सब होती, रोती ही रोती, है प्राण खोती, सिरको पटकती, पंजे झटकती, आगे सटकती।
झरें लपट के, लगते झपट के, आती है हटके, दुर्लभ है जीना, सुधबुध रहीना, सब खाना पीना ॥

भूली विचारी, ममता की मारी, बिल्ली दुखारी ॥

(४)

छोटा सा लड़का वह भोला भाला ॥

देखा तमाशा करके अचंभा बोला कि यह क्या ? अग्नी भयानक, जलती है धकधक, मरने में क्या शक।
क्या बच सकेंगे, सब जल मरेंगे, जान अपनी देंगे, अग्नी में कूदे, इनको बचाले आशा भी किससे ?

है कौन ऐसा ? छोटासा लड़का, वह भोला भाला ॥

(५)

मुश्किल में छिन छिन, गुज़रे कई दिन ॥

पल पल महीना, मुश्किल है जीना, खाना न पीना, आंसू बहाते, माला फिराते, हरि को मनाते।
भगवान् प्यारे ! तेरे सहारे, यह दिन गुज़ारे, अग्नी बुझी है, ठंडी हुई है, गर्मी मिटी है ॥

पल पल को गिनगिन, मुश्किल में छिन २ गुज़रे कई दिन ॥

(६)

हरि को मनाती, मटके उठाती ॥

मनमें है डरती, इक तर्फ़ करती, धरती में धरती, सारे ही मटके, हैं खूब पक्के, पर बीच उनके।

देखा तमाशा, कच्चा घड़ा था, सीधा धरा था, मैं क्या बताऊं बलिहारी जाऊं ध्याऊं ही ध्याऊं ॥
आवाज आती, हरि को मनाती, मटके उठाती ॥

(७)

तूने संभाले, जीवित निकाले ॥
हैरान होकर, कुरबान होकर, बेजान होकर, मन में मगन है, हरि से लगन है बेसुध बदन है।
मैं वारी जाऊं, सिर को झुकाऊं दिन रात गाऊं, महिमा तुम्हारी भगवान् भारी, भक्तों की बारी ॥
आफ़त को टाले, तूने संभाले, जीवित निकाले ॥

(८)

महिमा है भारी चरनों पै वारी ॥
अग्नी की झल से, गगन व थल से, वायु व जल से, तूही बचाता, संकट मिटाता दौड़ा ही आता।
माया प्रबल है, कुदरत अटल है, महिमा अचल है, सबपर नज़र है, तू बा खबर है, हमपर मेहर है ॥
भगवन् तुम्हारी, महिमा है भारी, चरनों पै वारी ॥

(९)

छोटा सा लड़का, वह भोला भाला ॥
देखा तमाशा करके अचंभा, बोला कि यह क्या? अग्नी में जाकर गरमी मिटाकर, इनको बचाकर।
खाना खिलाया, पानी पिलाया सब दुख मिटाया, भगवान्! धनर, वारूँ मैं तनमन, दिनरात गुणगान ॥
गाऊं तुम्हारा, छोटा सा लड़का, वह भोला भाला ॥

(दुर्गाप्रसाद गुप्त)

रामाष्टकम्

[ले० स्वर्गीय पं० गोवर्द्धनजी शर्मा विद्याभूषण]

(यह अष्टक पूजनीय पं० श्रीधर जी शर्मा शास्त्री नारनोल निवासी ने भक्ति में प्रकाशनार्थ भेजा है। उनके पूज्य स्वर्गीय पिता जी द्वारा रचित इस अष्टक में एक विचित्रता है, कि रामायण के आठों काण्डों की कथा क्रमशः एक२ श्लोक में कही गई है, और इस ढंग से कि आदि काण्ड की कथा प्रथमा विभक्ति में दूसरे (अयोध्या) काण्ड की कथा दूसरी विभक्ति में इसी प्रकार सबकी कथा कही गई है। अंतिम लवकुश की कथा सम्बोधन विभक्ति में कही गई है। चीज अच्छी है नित्यपाठोपयोगी है।

(सम्पादक)

अजादिदेव संस्तुतो निरंतमध्यपूर्वकः ।
स लक्ष्मणः सगाधिजः सुबाहु ताडकापहः ॥
अपैकधू प्रतारकः पिनाकचापधारकः ।
मुनीन्द्रमानभंजकः स पातु मां कुजापति ॥

अर्थ-ब्रह्मादि देवतावों से स्तुति किये हुये अंत मध्य पूर्व से रहित लक्ष्मण और विश्वामित्र के साथ सुबाहु और ताड़का को मारने वाले, अहिल्या का उद्धार करने वाले पिनाक धारी परशुराम के अभिमान को चूर करने वाले सीतापति श्री रामचंद्र जी मेरी रक्षा करें।

(२)

श्री रामं सह लक्ष्मणं सकरुणं सीतान्वितं पावनं ।
तातोज्ञापरिपालकं गुहयुतं तीर्थाधिराजाश्रितम् ॥
भारद्वाजयुतं च काननगतं श्री चित्रकूटे स्थितम् ।
वंदेऽहं भरतादिभिर्नं चलितं प्रीत्या स्वपादुप्रदम् ॥

अर्थ-लक्ष्मण के साथ तथा करुणा से युक्त, सीता समेत पिता की आज्ञा को पालने वाले, गुह युक्त, प्रयाग निवासी भारद्वाज से मिल कर जंगलों में घूमते हुये चित्रकूट पर विराजमान, भरत को पादुका प्रदान करने वाले श्री रामचंद्र जी को मैं नमस्कार करता हूं।

(३)

अत्र्यादिगीतेन च पंचवट्यां,
विरूपा कृता शूर्पणखा हि येन ।
सबंधुना राक्षसवंचितेन,
जटायुमुक्तेन सुरक्षितोऽस्मि ॥

अर्थ-अत्रि आदि मुनियों से स्तुति किये, शूर्पणखा को विरूप करने वाले, बंधुसमेत मारीच द्वारा ठगे हुये जटायु को मुक्त करने वाले श्री रामचंद्र जी द्वारा मैं सुरक्षित हूं।

(४)

नमस्ते बलं वायुपुत्रे प्रदात्रे,
कपीन्द्रेण सार्द्धं च मैत्रीं विधात्रे ।
हरीन्द्रस्तुतायाङ्गदाराधिताय,
नगेन्द्रे प्रियाजानकीवाञ्छिताय ॥

अर्थ-वायु पुत्र (हनुमान) के लिये बलको देने वाले सुग्रीव के साथ मित्रता करने वाले बाली से स्तुति किये हुये अंगद से आराधित पर्वत राज के ऊपर अपनी प्यारी जानकी की इच्छा करने वाले श्री रामचंद्र जी के लिये नमस्कार हो।

(५)

रामचारणान्मिलनात् ज्वलनात्,
कपिसिंधु नृपेन्द्रसुतारिपुः ।
प्रजहर्ष च सेतु शिवार्चनात्,
स्तत एव वृणोमि फलं रुचिरम् ॥

अर्थ-कपि (हनुमान) के सीता को ढूंढने के लिये जाने से, समुद्र लांघने से, सीता के मिलने से एवं लंका जलाने से, समुद्र सेतु और शिव पूजन से प्रसन्नता को प्राप्त श्री रामचंद्र जी से ही मैं सुन्दर फल चाहता हूं।

(६)

ससुतबन्धुदशाननहिंसित्,
रघुपतेश्च विभीषणरक्षित् ॥
जनकजामुखपंकजनंदिनो,
भृतककर्मणि किंकरतां गतः ॥

अर्थ-पुत्र और भाई आदि सहित रावण को मारने वाले, विभीषण की रक्षा करने वाले जानकी

के मुख कमल को खिलाने वाले श्री रामचंद्र जी की भृत्यता (सेवा) और किंकरता मुझको प्राप्त हुई है।

(७)

वामे सीता लक्ष्मणो यस्य पार्श्वे,
बंधू अन्यौ पादयोर्वायुसूनुः।
पादस्याग्रे देवता वानराद्य,
तस्मिन् रामे मे रतिः सर्वदा स्यात्॥

अर्थ—बाईं ओर सीता और दूसरे पार्श्व में लक्ष्मण, दोनों भाई भरत शत्रुघ्न और हनुमान दोनों पार्श्व में पैरों के आगे देवता और वानर हैं जिनके ऐसे श्री रामचंद्र जी में मेरी सदैव रति होवे।

(८)

कृपासिंधो! स्वामिन्! जनकतनयासंयुत विभो!
जनाधीशः! श्रीमन्! कुशलवसुतप्रीतमनस॥
प्रजापाल! प्राण! त्रिभुवनपते! दीनजनप!
भजेऽहं त्वां नित्यं शरणद! कृपां मे कुरु सदा॥

अर्थ—हे कृपासिंधो! स्वामी जनक पुत्री से युक्त प्रभो! हे जनाधीश! लक्ष्मी से युक्त कुश लव पुत्रों की प्राप्ति से प्रसन्न, हे प्रजापाल प्राण भूत त्रिभुवनपते! दीनों के रक्षक, शरण देने वाले, मेरे ऊपर सदा ही कृपा करो।

(९)

अष्टकं परमं श्रेष्ठं रामभक्तिप्रदायकम्।
यः पठेत् परया भक्त्या तस्मिन् रामः प्रसीदति॥

परम श्रेष्ठ राम भक्ति देने वाले इस अष्टक को जो परम भक्ति से पढ़ते हैं उनके ऊपर श्री रामचंद्र जी प्रसन्न होते हैं।

सनकी शंकर

[ले०—श्री गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु']

गाल के बजाने से उछल पड़ते हैं शंभु, चिंता रहती न कभी असन की।
गिरिजा को गोद में लिए रहते हैं सदा, सेना साथ रहती है भूत प्रेत गन की।
मन में हर्ष का ठिकाना रहता है कुछ, 'विष्णु' चढ़ा देते जब चावलों की कनकी।
एक लोटा पानी और बेल पत्तियों से शिव, होकर प्रसन्न भूल जाते सुध तनकी॥

\+ + + + +

साँपों को शरीर में लपेटे रहते हैं सोते, ऊँचे हिमगिरि पर छाया में गगन की।
लेकर त्रिशूल नित कानन में घूमते हैं, भस्म से छिपाये रखते हैं कान्ति तन की।
दुनिया में नाना वाहनों के होते हुए भी वे, बैठते हैं पीठ पर बूढ़े नन्दी गन की।
खप्पर में खाते हैं बजाते डमरू हैं "शम्भ" इसी से तो 'विष्णु' कहते हैं इन्हें सनकी॥

श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी और उनके श्रीराधारमणलाल

[ले०-श्रीयुत मथुराप्रसाद जी मुख्तार]

"सर्वस राधारमन भट्ट गोपाल उजागर" (भक्तमाल)

महाप्रभु चैतन्य देव जब पुरी से दक्षिण-यात्रा में गये थे तो उन्होंने गोदावरी तट अवस्थित श्री रंगपट्टन में वेंकट भट्ट के घर में चार मास तक निवास किया था। वेंकट भट्ट जी श्री सम्प्रदाय के आचार्य्य और लक्ष्मीनारायण के उपासक थे। इनके दो और भाई थे। पहले त्रिमल्ल भट्ट गृहस्थाश्रम में रहकर धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे और दूसरे भाई सन्यास लेकर काशी में प्रकाशानन्द के नाम से चतुर्थ आश्रम का सेवन करते थे। यह बड़े विद्वान और वेदान्त के ज्ञाता थे। श्री वेंकट भट्ट जी के इकलौते पुत्र, गोपाल भट्ट उस समय दस ग्यारह वर्ष के बालक थे। भट्ट जी की अतुलनीय भक्ति देखकर महाप्रभु ने उनके चार मास पर्य्यन्त रहकर वर्षा काल व्यतीत किया। जबतक आप वहाँ रहे नित्य ही विचित्र प्रकार की भक्ति विषयक चर्चा होती रही। बालक गोपाल भट्ट से महाप्रभु को पुत्रवत् स्नेह होगया। उनकी तीव्र बुद्धि और शान्त-प्रकृति तथा प्रतिभा देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें गोपाल मन्त्र से दीक्षित करके भक्ति के प्रेम के गूढ़ तत्वों की शिक्षा देते रहे। चार मास के दिन रात साथ रहने और पूर्ण शिक्षा पाने से गोपाल भट्ट के बाल्य-हृदय में श्री राधाकृष्ण की माधुर्य्य-मयी भक्ति की ललित-बेल लहलहाने लगी और सुन्दर त्रिभंग छवि पूर्ण शांति से अंकित हो जाने के समय महाप्रभु ने उन्हें निम्नलिखित उपदेश देकर उन्हें सम्यक् भांति से पालन करने का आदेश दियाः-

तजि ज्ञान शुष्क विराग, करु भक्ति में अनुराग।
सत्संग ब्रज में बास, ह्वै के विषय सों उदास॥
लखु शत्रु मित्र समान, रहु आप निर-अभिमान।
सबको सदा दे मान, हरिनाम गुन गन गान॥
तजु कर्म धर्म अधर्म, श्रुति विधि निषेधित मर्म।
रहि निभृत ब्रज वन मांझ, विचरहु दिवस निसि सांझ॥
चिंतति सुदम्पति केलि, विहरत दोऊ भुज-मेल।
या रस में ह्वै उन्मत्त, रागानुगा अनुरक्त॥
करि मानसि में ध्यान, उपचार षोड़स ज्ञान।
अधिकार विधि अनुमान, सेवा करौ रुचिदान॥

महाप्रभु के चले जाने के बाद बालक गोपाल भट्ट अपना समय मुख्यतः गुरुमंत्र के जाप और आराध्य देव के ध्यान ही में बिताते थे। पूर्व संस्कार और गुरुदेव की कृपा से बहुत ही अल्प कालमें श्री ललित त्रिभंग मूर्ति हृदय-पटल पर झलमल करने लगी। गोपाल भट्ट बचपन ही से ब्रह्मचर्य्य का पालन करके उसे प्राप्त करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होगये। चित्त में सदा वृन्दावन और वृन्दावनचन्द्र के दर्शनों की लालसा बलवती होती जाती थी लेकिन माता पिता के स्नेह वश घर छोड़ना असम्भव था। पिता जी संस्कृत के एक अच्छे विद्वान और उच्च

कोटि के भक्त थे। उनकी देख रेख में तीक्ष्ण बुद्धि गोपाल ने सत्-शास्त्रों और भक्ति-ग्रन्थों का पूरा २ अध्ययन कर लिया। कुछ बड़े होने पर यह तैलंग देश में श्री कृष्ण प्रेम और भक्ति का प्रचार करने लगे। पिता माता दोनों के स्वर्ग वासी हो जाने पर सम्वत् १५८८ (सन् १५३१ ई.) के लगभग जन्म-भूमि परित्याग करके वृन्दावन चले गये। इनके यहां पहुंच जाने का समाचार जब महाप्रभु चैतन्य देव को व्रज से लौटे हुये वैष्णवों द्वारा नीलाचल में मिला तो उन्होंने बड़ा हर्ष प्रकट किया और अपने बैठने का पाट (पीढ़ा) तथा कोपीन गोपाल भट्ट गोस्वामी के पास वृन्दावन में भेज दिया। सम्वत् १५९० (सन् १५३३ ई.) में महाप्रभु श्री चैतन्यदेव ने श्रीकृष्ण विरह में इस नश्वर शरीर को छोड़, स्वधाम को प्रस्थान किया जब यह सम्वाद वृन्दावन पहुंचा तो वैष्णव मंडली में बड़ा। कोलाहल मचा। गोपाल भट्ट गोस्वामी तो इतने क्लेशित हुये कि यमुना में कूद कर उनने आत्मा हत्या करने की ठान ली। परन्तु रूप, सनातन और लोकनाथ आदि गोस्वामी वृन्द ने उनको समझाया और कहा कि "गुरुदेव के आदेशानुसार कार्य्य करना परमधर्म्म है। जब उन्होंने अपना उत्तराधिकारी बनाकर आपके लिये अपना पाट भेजा है तो उस आज्ञा का उल्लंघन करना आपको उचित नहीं है। शोक तज कर आज्ञानुसार गौड़ेश्वराचार्य का पद विभूषित कीजिये।" गोपाल भट्ट गोस्वामी का शोक इससे निवृत्त नहीं हुआ। आपने उस पाट पर, जिसपर श्री महाप्रभु स्वयं बैठ चुके थे, बैठने से स्पष्ट अस्वीकार किया और उसे बराबर अपनी पूजा में रखकर परम दैन्य भाव से अर्चना करते थे। (यह पीढ़ा आजतक वर्तमान है। इसकी पूजा श्री राधा रमण जी के मन्दिर में बराबर होती है। समय के प्रभाव से प्राय: ४०० वर्षों में इसके चारों ओर का कुछ काष्ठ शीर्ण होगया है। इसलिये इसके किनारे किनारे चांदी के पत्र जड़ दिये गये हैं। इसकी लंबाई प्रायः हाथ सवा हाथ और चौड़ाई आधे हाथ से अधिक है। नित्य इतर लगने रहते के कारण यह पाद-पीठ सुचिक्कन और श्यामवर्ण का होगया है।) श्री महाप्रभु के विरह में गोपाल भट्ट जी का शोक दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। जिससे शरीर अति कृश होगया। एकदिन रात्रि के समय उनने स्वप्न में देखा कि महाप्रभु सामने खड़े हैं और कह रहे हैं कि "गोपाल! शोक करके आत्महत्या मत कर। तेरे मन वाञ्छित स्वरूप में तुझे अवश्य प्राप्त होऊंगा। तू स्वयं हिमालय प्रदेश में भ्रमण करके शालिग्राम जी को दामोदर कुंड से लाकर प्रेम से उनका पूजन कर"। श्री भट्ट जी ने इस घटना के कुछ ही दिनों बाद तीर्थ यात्रा के लिये उत्तराखंड की ओर प्रस्थान किया।

अनेक तीर्थों में होते हुये नेपाल प्रदेश में दामोदर कुंड पर पहुंचे। गंडकी नदी यहीं से निकलती है और श्री शालिग्राम शिलायें भी यहीं मिलती हैं। शास्त्रों में वर्णित विशेष चिन्हाङ्कित होने से प्रत्येक शिला दामोदर, हृषिकेश, वावन, आदि नामों से भगवान् के विशेष विग्रह माने जाते हैं। श्री भट्ट गोस्वामी कुछ दिन वहां निवास करके बड़े भाव भक्ति से द्वादश शालिग्राम शिलाओं को प्राप्त करके वहां से लौटे। मार्ग में हरिद्वार के पास देवबन निवासी गोपीनाथ नामक एक परम कुलीन गौड़ ब्राह्मण को कृपा करके श्री गोपाल मंत्र की दीक्षा दी। और उन्हें भक्ति मार्ग की विविध शिक्षायें दे स्वयं व्रज को चले आये और व्रज भूमि के विविध

स्थानों में रहकर भजन करते रहे (आज भी इनकी भजन-कुटिया श्री गोवर्धन, राधाकुंड, और संकेत में वर्तमान हैं ।) ये सदा परम दैन्यता से श्री कृष्ण के कान्ताभाव की उपासना में विभोर रहा करते थे श्री कृष्ण लीला का इनका नाम "गुणमंजरी" था । ये कुछ दिन ब्रज के कई स्थानों में रह कर वृन्दावन चले आये । और निधुवन के निकट उस स्थान पर एक छोटी सी कुटी बनाकर श्री शालिग्राम जी की सेवा पूजा करने लगे, जहां महारास की शुभ रात्रि में प्रेयसी राधिका को अकेली छोड़ योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण अन्तर्हित होगये थे और विरह-विधुरा श्री राधिका पुकारती रह गयी थी । गोपाल भट्ट गोस्वामी आजन्म ब्रह्मचारी रहे बंगाल के श्री निवास प्रभु, जिन्होंने गोस्वामी प्रणीत भक्ति-ग्रन्थों को वृन्दावन से बंगाल में लेजाकर वहां महाप्रभु के सिद्धान्तों का प्रचार किया था । इन्हीं महानुभाव के शिष्य थे । सनातन गोस्वामी के अनुरोध से इन्होंने श्री भगवद्भक्ति विलास (श्री हरि भक्ति विलास) और षट् सन्दर्भ नामक दो ग्रन्थों की रचना की और इनमें से पहला अनुष्ठान विषयक और दूसरा तत्व विषयक है । यह इतने निर अभिमानी और अकिंचन थे कि इन पुस्तकों में अपना नाम न देकर श्री सनातन गोस्वामी का नाम लिखवाया । इनके बनाये कुछ अन्य और कविता और भी संस्कृत, बंगभाषा और ब्रजभाषा में भी मिलते हैं ।

श्री वृन्दावन, जहां श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी निवास करके भजन पूजन करते थे वह ब्रजमंडल के बारहों वनों में प्रधान और यमुना तट पर अवस्थित है । पहले इसकी परिक्रमा पांच कोसों की थी परन्तु अब नदी के प्रवाह से कट कर इसका कुछ भाग जल और रेत में तथा कुछ नदी के दूसरे किनारे चला गया है । तीस चालीस वर्षों के पहले गहवर वन (वृन्दावन का) वर्तमान था । जो अब कई अन्य उपवनों के साथ लुप्त होगया । अब इस समय इसकी परिक्रमा प्राय तीन साढ़े तीन कोस की रहगई है । उस समय का वृन्दावन आज की नाईं पच्चीस सहस्त्र नर नारियों का निवास स्थान होकर गन्दी नालियों और मच्छर मक्खियों से भरा हुआ नहीं था । वरंच श्री कृष्ण चरित्र में स्वर्गीय बंकिम बाबू के कथनानुसार "हरित-पुष्प-दल-शोभिता, पुलिन-शालिनि, कल-निनादिनि, कालिन्दी कूल, कोकिल-मयूर-ध्वनित कुञ्ज-वन-परिपूर्णा, गोप बालक-गण के शृंग-वेणु-मधुर-रव से शब्दमयी असंख्य-कुसुमा-मोद-सुवासिता, नाग-भरण-भूषिता, विशालायत-लोचना-ब्रज-सुन्दरी-गण-समलंकृता, एक परम रमणीक माधुर्य्य रस परिपूरता, प्रिया प्रीतम की विहार-स्थली का नाम वृन्दावन था" यह वह स्थान है जहां पुलिन के पास वंशीवट के नीचे खड़े होकर उस लीला नट नागर ने मधुर मुरलियों में गाया था:-

हे राधे ! वृषभानु भूप तनये, हे पूर्ण चन्द्रानने ।
हे कान्ते ! कमनीय कोकिल रवे, वृन्दावनाधीश्वरी ॥
हे मत् प्राण परायणे च सुभगे ! हे सर्व जयेश्वरी ।
आगत्य त्वरित त्वमत्र विपिने मां हीनमानन्दय ॥
हे श्यामे सुभगे स्वभाव चपले चित्रे विशाखे प्रिये ।
हे चन्द्रावलि श्यामले च ललिते हे तुंगभद्रे रमे ॥
हे भद्रे ! सुखदे च चम्पकलते, हे स्वर्ण रेखे शुभे ।
अन्या या मम वल्लभा ब्रजपुरे तास्तूर्णं मायच्छत ॥

जिसे सुनकर ब्रज मंडल की गोपीयां और

थी और महारास की विविध लीलायें हुई थीं।

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी इसी वृन्दावन में निवास करके सदा भजन में निमग्न रहते थे लेकिन जब कभी पूर्वोक्त स्वप्न की बातें उन्हें स्मरण हो आती थी तो विरह वारिश में डुबकीयां लेने लगते और कभीर तो बाह्य ज्ञान से भी रहित हो जाते थे। इनका नित्य का नियम था कि प्रातःकाल भजन पूजन के पश्चात् दर्शन-यात्रा में चले जाते और श्री गोपीनाथ जी, श्री राधागोविन्द जी तथा श्री मदन मोहन जी के अनूप रूपका दर्शन करके अपनी कुटी पर आते थे। बिना दर्शन किये यह अन्नजल ग्रहण नहीं करते थे। एक दिन जब दर्शनों से वापस आये तो इनके कुल के एक वैष्णव ने कुछ नवीन और बहु मूल्य वस्त्र और आभूषण लाकर इनके सामने रख दिये और निवेदन किया कि 'महाराज! एक बड़ भागी सज्जन ने श्री वृन्दावन के सभी ठाकुरों के लिये ऐसे ही वस्त्र आभूषण भेंट किये हैं और आपके शालिग्राम जी के लिये भी आपकी अनुपस्थिति में यहां रखगया हूँ"। इतना सुनकर इन्हें बहुत खेद हुआ। सोचने लगे कि मेरे शालिग्राम जी के भी यदि हाथ, पांव आदि होते तो मैं भी उन्हें आभूषित करके नेत्रों को सुफल करता। इस घटना से इनकी त्रिभंग छवि के दर्शनों की लालसा दिन प्रतिदिन बढ़ती गई।

कुछ दिनों के बाद शरीर में रोग आजाने के कारण यह निर्बल होने लगे। जबतक शक्ति रही काम नियम पूर्वक चलता रहा। परन्तु थोड़े ही दिनों में तीनों मन्दिरों के दर्शन करने के लिये जाने की सामर्थ्य शरीर में नहीं रह गई। चिरकाल से जिन मूर्तियों की मनोहर सुन्दरता निरखि २ कर विरहाग्नि को बुझाते थे आज उसे न पाकर परम व्याकुल हो उठे। तीनों देवालयों में आने जाने और परिक्रमा करने में प्रायः दो कोसों की दूरी पड़ती थी और उस समय की रुग्नावस्था के कारण इतनी दूर आना जाना असम्भव था। पर बिना दर्शन के अन्नजल नहीं करते थे। इसलिये शरीर और भी क्षीण होता गया। इसी में वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशी आ पहुंची। (सम्वत् १५६६ सन १५४२ ई. था) आज नृसिंह चतुर्दशी के सन्ध्या समय इनके हृदय में एक अद्भुद भाव का विकाश हुआ। सोचने लगे कि आजके दिन भक्त प्रहलाद के दृढ़ विश्वास और परमप्रेम के कारण जो भगवान पत्थर के खम्भे में से आविर्भूत हुआ क्या वह मेरे अर्चित श्री शालिग्राम जी से प्रकट नहीं हो सकता? केवल मधुर प्रेममयी भक्ति सरसता की आवश्यकता है वह तो दानि-शिरोमणि और परम भक्त वत्सल हैं। सब कुछ कर सकता है। यही सोचतेर अर्धरात व्यतीत होगई। चारों ओर स्वच्छ चांदनी छिटक जाने से वसन्त ऋतु के विकसित वृन्दाविपिन में कन्दर्प महाराज का अचल साम्राज्य फैला हुआ था। जहां जो कुछ देख पड़ता था रजतमय भापता था:-

> कोकिल भृंग कुरंग पिक, चातक वृक्ष सफल।
> वृन्दावन अरु मोर सब, श्वेत भये सुख मूल॥

यमुना जल से स्पर्शित शीतल-वायु कुसुमित वृक्षों से होकर मन्द २ बह रही थी। कभी २ कोयल और मयूर के मधुर शब्द सुनाई पड़ जाते थे। चन्द्रमा अपनी स्वच्छ किरणों से अमृत की बून्दें बरसा रहा था। ऐसे समय में परम विरही

श्री गोपल भट्ट गोस्वामी पीपल वृक्ष के नीचे उस निर्मोही की विरहाग्नि में परितप्त हृदय होकर अश्रु-पात कर रहे थे। और जहां रास में श्रीकृष्ण रासेश्वरी राधिका को छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गये थे, उसी स्थान में निवास करने के कारण श्रीकृष्ण दर्शन की व्याकुलता अधिक बढ़ गई थी अतएव इनके मुखसे उस समयः-

हा नाथ! रमण प्रेष, क्वासि २ महा भुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे, सखे दर्शय संनिधम्॥

इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं निकलता था। शीतल वायु शरीर में लगने से भीतर की वियोग वन्हि और भी प्रज्वलित हो उठती थी। नेत्रों से गर्म आंसुओं के प्रवाह निकल कर सच्चे हृदय के शब्द सुनाई पड़ते थे कि "प्रभो! यदि तुझे यह शरीर प्यारा है तो शीघ्र एक ऐसे स्वरूप में प्रकट होकर कृतार्थ कर जिसमें तीनों मूर्तियों की छटा हो और नहीं तो आज ही इस शरीर का अन्त करदे"। सच ही हैः-

प्रेम पंथ को पीठ है, यह जीवो न सुहाय।
मंगल दिन है आजको, पिय सन्मुख जिय जाय॥

इसी प्रकार आहें भरते २ जब सारी रात बीत गई और मैं तू का झगड़ा मिट गया श्री राधिका जी के हृदय के विरह का भाव इनके हृदय में यहां तक बढ़ा कि आत्म विस्मृति होगई और प्रेम-मय-प्राणनाथ के अतिरिक्त 'अपनपव" भी न स्मरण रहा। 'मैं तन तू मम प्राण' होगये तो एक क्षण के लिये बाह्य चेतना जाती रही और अन्तःकरण में उस साक्षात् मन्मथ करुणाकर भक्त-वत्सल नटवर रूप से प्रकट होकर मन्द २ मुसकान के साथ यों बोला अय गुण मंजरी! अन्ततः तू ने श्यामघन से बिज्जुरी खींच ही ली। उठ! और अपना प्रेम धन सम्भाल।" अमृत वाणी सुनते ही नेत्र खुलगये। देखा कि चन्द्रमा की किरणें मन्द होगई हैं। पूर्व दिशा में सूर्य्य की लाली आने ही वाली है और भी देखा कि जिस सींक के डब्बे में द्वादश शालिग्राम विराजमान थे उसका ढकन नीचे गिरा हुआ है। बाहर का प्रकाश डब्बे पर पड़ता था। उठकर जो कुछ डब्बे में देखा उससे देह का संधान नहीं रहा, रोमांच हो आये, प्रस्वेद चलने लगा, बोलना चाहते थे किंतु कंठाव रोध होजाने से कुछ भी बोल नहीं सके और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

एक वैष्णव ने आस पास की भक्त मंडली को इसकी सूचना दी। बातकी बातमें उस समय जितने भजनानन्दी वैष्णव वृन्दावन में थे आ पहुंचे कुटी में पूरा २ प्रकाश आगया था देखने से स्पष्ट मालूम हो गया कि जिन बारह शालिग्राम शिलाओं का पूजन गोपाल भट्ट गोस्वामी पीटारी में रखकर किया करते थे उनमें से ११ तो ज्यों के त्यों हैं किन्तु १२ वां, दामोदर शिला १६ अंगुल परिमित अतुल शोभा युक्त त्रिभंग मुरलीधर के रूपमें विराजमान हैं। शालिग्राम शिला के रेखा मुख, चक्र, आदि चिन्ह सम्पूर्ण अंग में जहां तहां प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसी अनुपम छवि कभी भी चर्म चक्षुओं के सन्मुख नहीं आई थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उस अनूप-रूपकी कुछ लावण्यता यों कही हैः-

सुन्दर सुचिक्कन सुढार श्याम सोहै महा,
लावण्य धाम लट लटक निज अंगकी।
कोमल चरण कौल नटवर ठोर कोर,

मोर २ छोरें छवि कोटिन अनंग की ॥
बंक गति लंक तें सुअंग को लोनिहे हावे,
मृदु कर सोंहें मुद्रा [वेनु के प्रसंग की।
कुंडल श्रवण शीश चन्द्रिका नमन जय २,
राधिका रमण लाल ललित त्रिभंग की ॥

महात्माओं ने भट्ट गोस्वामी को उठाकर चैतन्य किया और कहा कि अपने भाग्य की सराहना करो कि तुम्हारी भक्ति से आकर्षित होकर स्वयं तुम्हारा प्रियतम तुम्हारे यहां प्रकट होगया। अब अभिषेक की तैय्यारियां करो। सुनते ही सब रोग शोक दूर हो गये और परम आह्लादित मन से कार्य्य में लग गये। वृन्दावन में ठाकुर के प्रकट होने की बात बिजली की भांति फैलगई और ब्रजवासी यत्र तत्र से दही, दूध, मधु, घृत आदि लेकर आ पहुंचे। गोस्वामियों ने शास्त्रोक्त रीति से अभिषेक किया और श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने खिल और शक्कर का प्रसाद सिद्ध करके श्री जी को प्रथम भोग रक्खा।

यही दो पदार्थ उनको उस दिन भिक्षा में मिले थे। (आज भी वैशाखी पूर्णिमा के दिन, वार्षिक पाट महोत्सव पर और जन्माष्टमी उत्सव के समय पहले इन्हीं दो वस्तुओं का भोग लगता है।)

पीठ पर सेवा रोक अन्तर में चाक सोलह,
अंगुल को वपु श्याम अनुपम तन है।
गोविन्ददेव के सो मुख, गोपीनाथ के सो हिय,
मदन मोहन सों राजत चरन है॥
वैशाख मास पूर्णमासी चन्द्रवार पन्द्रह सै,
निन्यानवे गोपाल सम्भरण है।
नगत विशाखा सामुदक मद्द मिति सोप,
शालिग्राम जो भये राधिका रमण है॥

श्री राधारमणलाल जी के श्री अंग की विलक्षण शोभा और कान्ति का वर्णन किया जाय तो सुनने में अतिउक्ति मालूम होगी परन्तु कुछ दिनों तक बराबर श्री विग्रह का ध्यान पूर्वक दर्शन करने से एक अलौकिक मनोहरता झलकती है। नख से सिख लों स्वाभाविकता, कोमलता, और सुन्दरता अंग प्रत्यंग से स्फुटित होती है। शालिग्राम जी के चिन्ह सर्वांग में विराज मान है। बांया चरण सीधा और दाहिना ऐसे भाव से टेढ़ा है कि प्रदेश के झुकाव और ग्रिवां के मरोड़ से एक ललित त्रिभंग छवि होगई है लेकिन मस्तक टेढ़ा न होकर विशेष रूप से सीधा है। बायें चरण के तलवा में स्वाभाविक चिकनाई, गुदगुदापन रेखायें और कुछ चिन्ह भी देख पड़ते हैं। सभी उंगलीयों के नख, की रेखायें यहां तक कि नख और त्वचा की सन्धि स्थानों के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं। पिंडली और और जंघा किसी पूरे व्यायाम किये हुये पहलवान के से पुष्ट और सुडौल दीखते हैं। कटि प्रदेश बहुत क्षीण और गहरी नाभी के साथ २ वक्षस्थल परम प्रशस्थ और पिया कम्बुवत् सुन्दर है। जंघे और कांख की सन्धियां इतनी चिकन और स्वच्छ हैं कि सहज ही सांचे के ढले हुये प्रतीत होते हैं। यही २ भुजायें, वेणु बजाने की मुद्रा में ऐसी मस्ती से मुड़े हुये कि जिससे वक्षस्थल पूर्णतया उभर गया है और कन्धे की मांसपेशीयां खिलकर वृषभ कंध की नाईं होगई हैं। भौओं की मधुरताई नासिका की खड़ारताई, कपोलों की गुलाई, चिबुक की नुकाई, मुखारविन्द की निकाई तथा लावण्यताई केवल अपूर्व, अलौकिक और अवर्णनीय हैं। नासिका में मोती तथा कानों में कुण्डल पहनने के

छिद्र विराजमान हैं। विशेषता यह है कि जैसी बहुत दिनों तक झूमक अथवा कुंडल पहनने से हो जाती हैं। बांकी भोंवों और पलकों के बान तक साफ साफ दीख पड़ते हैं। सिर पर अलकों का जूड़ा बड़ी सुन्दरता से बंधा हुआ है। नेत्रों के विषय में श्री भारतेन्दु का यह दोहा कुछ२ उपयुक्त होता है कि:-

अधिक बधिक के बान तें बंक बिलोकनि लाल।
वह परसत प्रान हरे यह निरखत तत्काल॥

परम भाग्यवान् श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जब अपने प्राण धन श्री राधारमणलाल के कंठ में गुंजा की माला, कलाइयों पर मालती के गजरे, पैरों में मौलसरीं के नूपुर, चन्दन की चनियां के उपर कटि-प्रदेश में कुंद कलियों की कोंदन, सिर पर बन पुष्पों के मुकट, पहना कर मोर पक्ष के तुर्रे लगा और भाल में केसर का तिलक देकर तुलसी और गुलाब के बनमाल धारण कराते थे, उस समय की शोभा अनिर्वचनीय होती थी। खिले सरोज के शदृश्य हाथों के कद पर पड़ी हुई हरित मधुर मुरली से दाहिने हाथ की निर्देशिका-उगली नीचे आकाश की ओर इंगित करके, मानो यह तान छिड़ती है कि "वह ब्रह्म मैं ही हूं। जिसे तू इधर उधर ढूंढ़ा फिरता है।" और कनिष्टका को ऊंची करके इस बात को जता रहे हैं कि 'इस कनिष्टका पर गोवर्धन को उठा, इन्द्र का गर्व तोड़, व्रजकी रक्षा भी करने वाला मैं ही हूं' क्या ही निर्गुण और सगुण तथा ऐश्वर्य्य और माधुर्य्य का सम्मिश्रण है। एक बार निराकार के प्रेमी भी मुग्ध होकर सहसा बोल उठते हैं कि-

मधुर मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनं मधुरं।
मधुगन्धि मृदुस्मित मेतद् हो, मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्।

श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी चालीस वर्षों तक श्री जी को अनेक प्रकार से लाड़ लड़ाते भजन पूजन तथा सत्संग में अपना समय व्यतीत करते आये। जब वृद्धावस्था आ पहुंची तब एक दिन अपने प्रधान शिष्य, गोपीनाथ जी को, मनसे स्मरण करके बुलाया। आकर्षित हो गृह त्याग कर वह वृन्दावन आकर श्रीगुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुये। कुछ समय के उपरान्त गोपाल भट्ट गोस्वामी ने इनसे कहा कि "तुम विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो और श्री जी की पूजा का भार ग्रहण करो। इस मधुर मूर्ति की अर्चना किसी विरक्त द्वारा सम्यक प्रकार से नहीं हो सकती। अतएव मैं श्री विग्रह की पूजा सद् गृहस्थ के हाथों में देना चाहता हूं। श्री गोपीनाथ जीने बड़े अनुनय के साथ विनय किया कि "प्रभो! आपने मुझे संसार के अन्धेरे कुवे से निकालकर बाहर किया है। फिर मुझे उसी गढ़हे में न गिराइये। यदि ऐसी ही इच्छा है। तो श्री जी की सेवा भार मेरे कनिष्ठ भ्राता दामोदर दास के हाथ सौंपिये। उसके वंशज आपके आदेशानुसार सेवा कार्य्य करने में तत्पर रहेंगे। गोस्वामी जी ने वैसा ही किया। दामोदर दास को बुलाय कर सब सेवा नियम समझा दिया और सम्वत् १६४३ (सन् १५८६ ई.) में श्रावण शुक्ला पंचमी को ८६ वर्षों की आयु पूरी करके इस नस्वर शरीर को त्याग कर इष्टलाभ को प्राप्त हुये।

श्री गोस्वामी दमोदर दास जी के तीन पुत्र हुये। जिनको उन्होंने श्री ठाकुर जी की सेवा दी। आज तक इन्हीं के वंशज नियमानुसार श्री राधा-

रमण लाल जी की सेवा पूजा करते आरहे हैं। नियम बड़े कड़े हैं और इनका पालन पूर्ण रीति से आज प्रायः ३५० वर्षों से होता आता है। इन गोस्वामियों के अतिरिक्त दूसरा कोई भी वेतन भोगी पुजारी या अन्य व्यक्ति मन्दिर के भीतर नहीं जा सकता और न श्री जी को स्पर्श ही कर सकता है। यहां तक कि श्री जी प्रसाद-भोग मन्दिर ही में इन्हीं गोस्वामीस्वरूपों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। इनके वंशज वृन्दावन में विख्यात पंण्डित भक्त और भारत-प्रसिद्ध धर्माचार्य्य होते आये हैं। स्वनाम-धन्य विद्या-वागीश गोस्वामी राधाचरण जी (गोलोक वासी) और वयोवृध श्री गोस्वामी मधुसूदनाचार्य्य सार्व्वभौम, तथा गोस्वामी श्री वनमाली लाल जी और उनके भ्राता दार्शनिक शास्त्री गोस्वामी दामोदरलाल जी ही गोस्वामी वंश के आचार्य्य रत्न और श्री राधारमणलाल जी के सेवाधिकारी हैं।

विधि–विधान

(रचयिता–महाकवि पु० प्रताप नारायण जी जयपुर)

(१)

अर्थ इस भाग्य पहेली का, ध्यान में किसके आता है।
भाग्य का रचने वाला भी, बस इसके हो जाता है॥

(२)

भाग्य पर अपना भावी पर, किसी का ज़ोर नहीं चलता।
भोगना भोग उसे पड़ता, जन्म कर जो पलने पलता॥

(३)

लेख जो लिखा विधाताने, नहीं वह राई भी घटता!
नहीं वह तिलभर भी बढ़ता, नहीं वह पलभर भी हटता॥

(४)

नहीं है वहां कमी कुछ भी, भरे हैं रत्नाकर जलसे।
पात्र तो अपना अपना ही, भरेंगे सब अपने बलसे॥

(५)

भाग्य के रहे भरोसे जो, नहीं वह भाग्यवान होता।
भाग्य पर, बलपर जो रहता, वही सुख बीजों को बोता॥

(६)

नहीं पुरुषार्थ शक्ति मेरी, पूर्ति का पूरा लेखा है।
बड़े से बड़े बली को भी, भाग्य पर रोते देखा है॥

(७)

एक है वह मानव जिसके, दुष्ट भी दण्डे जड़ते हैं।
एक है वह जिसके पंडित, किरोड़ों पैरों पड़ते हैं॥

(८)

एक से एक यहां बढ़कर, देख उन क्यों कोई तरसे।
भाग्य की वर्षा के अतिरिक्त, एक भी बूंद नहीं बरसे?

(९)

अंग क्या फड़केंगे अपना, फड़क कर तब दायें बायें।
हाथ में नहीं हुईं अपने, हाथ की जो तब रेखायें॥

(१०)

दिखा कर हाथ ज्योतिषी को, न हाथ में क्या फल है लेना।
हाथ क्या दो हाथों के हैं, किसी का भाग्य बदल देना॥

पुनर्जन्म

[ले० श्री यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव]

मृत्यु के पश्चात् जो जन्म होता है उसे पुनर्जन्म कहते हैं। पुनर्जन्म भी मन की उत्पत्ति है। मनका कोई आकार नहीं होताः–

'नाम मात्रा कृते व्योम्नो यथा शून्य जड़ा कृतेः।'

वह तो कल्पित और मिथ्या है।

'संकल्पनं मनो विद्धि संकल्पात्तं न विद्यते।'

मिथ्या मन की चेष्टाएँ भी मिथ्या होती हैं। इसलिये पुनर्जन्म भी मिथ्या है।

'इद मरुमान्भ यत्पन्नं मृगतृष्णा वद्यान्नमम'।

हमारा शरीर भी मिथ्या है वह तो किसी के संकल्प की मूर्ति है। हम उस मूर्ति के द्वारा उसी के संकल्प की पूर्ति कर रहे हैं। अब इस जन्म में हम जो २ संकल्प करेंगे उनकी पूर्ति के लिये हमको पुनः शरीर धारण करना पड़ेगा।

'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'।

मनकी कामनाएँ ही जन्म और मरण आदि का मुख्य कारण है। जैसी इच्छा होती है वैसा ही शरीर धारण करना पड़ता है। मनके प्रभाव से ही

मनुष्य देवता हो जाता है और मनही के प्रभाव से मनुष्य शूकर चाण्डाल आदि की योनियां धारण करता है। मन महाराज की लीला अपरम्पार है। कविदास ने कहा भी है:-

"कहूं क्या हाल मैं उनका, सीने में जो रहते हैं।
कभी वह दोस्त बनते हैं, कभी कौने में रहते हैं॥
बड़े हजरत हैं सैलानी नहीं वह घर में रहते हैं।
कभी वह आस्मां पर हैं, कभी दुनियां में फिरते हैं॥
चलन बिजली सी है उनकी, कभी उससे भी बढ़ते हैं।
नहीं कोई देवता उनको, वह सबके घरमें रहते हैं॥
नहीं सामान कुछ रखते, 'हवाई घर' बनाते हैं॥
उसी की हम नकल करके, यहां सब काम करते हैं॥
उन्हें सूरत सुहाती है, सुगन्धित राम भाती है।
वह जिसको चाहते हैं फिर, उसी की धुनमें रहते हैं॥
बड़े भारी बली हैं, और बांके हैं! हठीले हैं।
उन्हीं की धर पकड़ में, लोग दुनिया भरके रहते हैं॥
जटा रखते घुटाते सिर, लुटाते धन बने जोगी।
वह चिमटा और तुम्बा लेके तीरथ तीर फिरते हैं॥
करे जो दोस्त बस इनको, उसे भगवान् मिलते हैं।
नहीं कुछ शक है इसमें, सब धरम के लोग कहते हैं॥

शरीर वासनामय है। वह माता के रज और पिता के वीर्य्य से बनता है। चार मास बाद उससे जीव आता है तब उसे ज्ञान है कि उसके हाथ पांव बंधे हुए हैं और वह उलटा घोर अंधकार पूर्ण कैद खाने में लटक रहा है। उसके मुंह पर झिल्ली पड़ी है जिसके कारण उससे बोलते और रोते नहीं बनता। जिस स्थान में वह रहता है वह मल मूत्र राध, रक्त, पीव आदि घृणित पदार्थों से भरा हुआ है और इतना सकरा है। कि उसमें हाथ फैलाने और पांव पसारने की जगह तक नहीं है। इससे जीवको बड़ा क्लेश होता है और वह उसकी यातना से व्याकुल होकर भगवान् को पुकारता है।

'गर्भवासे महद् दुःखं त्राहिमां मम सूदनं।'

\+ \+ \+ \+

'संसार दुःख गहनाद् जगदीश रक्ष'।

\+ \+ \+ \+

'जरा मरण भीतोऽस्मि'।

और प्रतिज्ञा करता है कि पहले मैं सहस्त्रों योनियों में भ्रमण कर चुका हूं। और अनेको योनि द्वारा से निर्गत होकर शूकर, कुक्कुट, काक, गीदड़ पिशाच आदि जीवों को भक्ष्य योग्य वस्तुओं का आहार तथा अनेक जीवों के स्तनों का पान कर चुका हूं। और एकबार जन्म लेकर फिर मृत्यु, फिर जन्म, और फिर मृत्यु, इस प्रकार बार बार जन्म लेकर और मृत्यु को प्राप्त होकर अनेकों जन्म और मृत्युओं का आलिङ्गन कर चुका हूं। स्त्री पुत्र और कन्या आदि का पालन पोषण करने के लिये न जाने मैंने कितने पाप किये हैं और जिनके लिये ये पाप किये हैं वे बड़े मज़े में है केवल मैं ही अकेला दण्ड भुगत रहा हूं। हाय! हाय! यह कैसा दुख है। इस दुख सागर से उद्धार पाने का कोई मार्ग दीख नहीं पड़ता। निराश्रय के आश्रयदाता! हे अशुभक्षयकर्त्ता! हे महेश्वर! हे मोक्षदाता! हे नारायण! यदि अबकी बार इस नरक कुण्ड से छुटकारा पाजाऊंतो मैं आपकी सेवा करूंगा। यदि एकबार इस क्लेश पूर्ण योनि से निकल पाऊं तो मैं अशुभविनाशक सांख्य योग और सर्व दुख निवारक ज्ञानयोग का अभ्यास करूंगा। यदि आप एकबार इस योनि से मुक्ति करदेवें तो मैं परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करूंगा।

पूर्वं योनि सहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा भुक्ताः पीतानाना विधाः स्तनाः॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्मश्चैव पुनः पुनः।
यन्मया परिजन स्वार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फल भोगिनः।
अहो! दुःखाम्बुधौ मग्नोनत्र पश्यामि प्रतिक्रियाम्॥
यदि योन्यो प्रमुच्येऽहंतंप्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभ क्षय कर्तारं फल मुक्ति प्रदायकम्॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ततः साङ्ख्यं योगमभ्यसे।
अशुभक्षय कर्तारं फल मुक्ति प्रदायकम्॥

और भीः—

'गर्भवास में उलटी लटक्यो, पायो दुख अति भारी।
जो प्रभु अबके बाहर निकसौं, तेरो भजन करौं हरबारी॥

परन्तु बाहर आते ही सब भूल जाता है। कवि 'दास' उसी को याद दिलाकर कहते हैं:—

कहो तो बात उसदिन की जन्म ले जब यहां आये।
बहुत रोते थे कहते थे, कहां आये कहां आये॥
वचन क्या क्या करे तुमने, किया संकल्प क्या पुरा।
गये सब भूल माया मे, कहां थे अब कहां आये॥
रहे वे सुख लड़कपन में, चढ़ा सिर भूत तरुणाई।
न सूझा रात है दिन है, न जाना क्यों यहां आये॥
बुढ़ापे में गई शक्ती, हुई कष्ट बात की बूझी।
हुआ तब ध्यान मृत्यु का, अमर होकर नहीं आये॥
गली कैसे बने पत्थर! पड़े दोनों दिशा ठोकर!
गये जैसे-बिना करतब, वहां से फिर यहां आये॥
जन्म व मरण का संचर, व चौरासी हुआ फिरना॥
बिना हरिदास भक्ति के नहीं छूटे जहां पाये॥

और भीः—

बाल स्तावत् क्रीडा सक्तः, तरुणस्तावत् तरुणी रक्तः।
वृद्ध स्तावच्चिन्तामग्नः, परमे ब्रह्मणि कोऽपिनलग्नः॥

भावार्थ—मनुष्य बचपन में खेल कूद में लगा रहता है, जवानी में युवती स्त्री में आसक्त रहता है, और बुढ़ापे में फिक्र और चिन्ताओं में गर्क रहता है, परन्तु परब्रह्म परमेश्वर का कभी ध्यान नहीं करता।

इस प्रकार प्राणी मिथ्या स्वार्थ पर हजारों तरह के कष्ट सहता और अपमानित होता है। परन्तु फिर भी नहीं चेतता। अन्त में एक दिन काल भगवान् आते हैं और चोटी पकड़ कर उठा लेजाते हैं। इसी ममता और मोहके कारण प्राणी को बार बार जन्मलेना और मृत्यु को प्राप्त होना तथा चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाना पड़ता है:—

'यावज्जननं तावन्मरणं तावज्जननी जठरे शयनम्।
इति संसारे स्फुटतर दोषः कथमिह मानव तव संतोषः॥

भावार्थ—जब तक जन्म ग्रहण करना है तब तक मरना है। और माता के पेट में सोना है। संसार में यह दोष स्पष्ट दिखाई देता है परन्तु हे मनुष्य! उस पर भी मालूम नहीं, तुझे संसार से संतोष कैसे मिलता है।

अतः जो समय बीत गया। है उसे जानेदो। वह अब लौट कर नहीं आवेगा परन्तु जो समय हाथ में है उसे वृथा मत खोः—

'पुत्र, कलत्र, सुमित्र, चरित्र,
धरा, धन-धाम है बन्धन जीको।
बारहिं बार विषय फल खात,
अघात न जात सुधारस फीको॥
आन औसान तजो अभिमान,
कही सुन नाम भजो सिय-पीको।
पाय परमपद हाथ सो जात,

गई सो गई अब राख रहो को ॥'

फिर भगवान् ने भी तो आश्वासन दिया है कि मेरा आश्रय, लेकर जो जरा मरण से छूटने का उपाय करते हैं उनको मैं मृत्यु संसार सागर से पार कर देता है।

'जरा मरण मोक्षाय ममाश्रित्य यतान्तिये।
अहं तेषां समुद्धता मृत्यु संसार सागरात् ॥'

भावार्थ

जरा मरण मोक्षार्थ जो मम आश्रित हुइ जाइ।
ताहि कर्म सब ब्रह्म ही अध्यात्म दरसाई ॥

भला! यह भगवान् की आश्वासन वाणी कौनसे साधक के हृदय में धीरज न बंधा देगी।

भगवान् ने अर्जुन को उपदेश देते समय कहा भी है:-

हे अर्जुन! मैं सर्वज्ञ और आत्म दृष्टि हूं। मेरा ज्ञान तेल की धारा के समान अखण्डित है। तू अल्पज्ञ है और अपने शरीर को ही आत्मा समझता है। तेरी दृष्टि शरीर की ओर है इसीलिये शरीर की मृत्यु होने पर तू समझता है कि 'मेरी मृत्यु होरही है।' शरीर की ओर तेरी दृष्टि होने से तू आत्मदृष्टि नहीं हो सकता। आत्मदृष्टि न होना ही मृत्यु कहलाता है उसीको आत्म विस्मृति अथवा अज्ञान कहते हैं। यही अविद्या तू इच्छा करके भी शरीर धारण नहीं कर सकता परन्तु मैं अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर सकता हूं क्योंकि मैं अज्ञान के वशीभूत नहीं हूं वरन अज्ञान ही मेरे आधीन है। और तू अज्ञान के वशमें तथा उसके आधीन है। जीव भाव में अभिमान करने के कारण से ही तू आत्मा को भूल रहा है। प्रकृति ने तुझे शरीर रूपी कटघरे में घेर रक्खा है। मेरे भी शरीर है परन्तु मैं वस्त्र के समान उसका त्याग कर सकता हूं।

अपूर्णम्।

चेत

[रचयिता-प्रमुदण ब्रह्मचारी प्रग० प्र० आश्रम]

चेत चेत मन! अब की बेर ॥
बहुतक जन्म सिराने ऐसे, पर माया कंफेर ॥
घड़ी पल छिन दिन बीत रहे हैं, नित प्रति सांझ सवेर ॥
जो कछु बने सुकृत अब करले, तकदे सूंठी मेर ॥
अवसर बीतो जाय अमोलक, शास्त्र गुरु रहे टेर ॥
या जगमें कछु सार नहीं है, घोर पाप अन्धेर ॥
हृदय कमल में ज्योति जरत है, उलट नयन तहां हेर ॥
प्रभु के दर्शन दुर्लभ प्यारे ? काहे लगाई देर ॥

सत्संग सभा

(प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा)

आज तो हमारी सत्संग सभा का ढंग ही निराला है। कहीं भंग छन रही है तो कहीं रंग बरस रहा है कवि लोगों ने एक हुल्लड़ मचा रक्खा है। अपनी प्रतिमा की पिचकारियां चला रहे हैं और दर्शकों को ब्रज की होली का अनुपम दृश्य दिखारहे हैं। आइये पाठक हमभी ब्रज का फाग देखते चले।

एक ओर को राधा की पारटी है तो दूसरी ओर कृष्ण की मंडली है दोनों ओर से पिचकारियां चल रही हैं अबीर उड रहा है और एक दूसरी पारटी को मात देने की धुन में मस्त है। इधर अचानक कृष्ण की रंगीन पिचकारी राधा के मुख पर लगी। आंखे झप गई कपड़े तर होगये और कुछ क्रोध उमड़ आया तो झट "सहेली मण्डल" कम्पनी के नाम एक फरमान जारीकर दिया।

झोना अहीरन तैं अगर अबीरन तैं,
  चारि अनी चारु चार ओरनते धावोरी।
एक हाथ ओडो पिचकारी की अगारी मार,
  एक हाथ ओट राखि आंखन बचावोरी॥
कवि सरदार आयो बड़ो खिलवारी ताहि,
  खेल को संवाद रंग रंगन बतावोरी॥
कीरति कुमारी कह्यो हेरि के कुमारि कोऊ,
  हीरी एनवारी बनवारी टांच लावोरी॥

बनवारी की गिरफ़तारी का वारंट निकाल कर कीर्ति कुमारी खुद भी संभलगई और पिचकारी लेकर लगी दनादन चलाने। मगर वाह रे ढीठ! एकही रहे।

"ज्यों ज्यों छबीली कहे पिचकारी लै,
  एक लई यह दूसरि लीजे।
त्यों त्यों छबीले छकैं छबि छाक,
  सों हेरे हंसे न टरे खरो भीजे॥'

पिचकारियों पर पिचकारियां पड़ रही हैं और आप टस से मस नहीं होते। खड़े खड़े हंसते हैं। इस मौके को गनीमत समझ कर एक ब्रजबाला ने कहा है।

मारिगई तब की वदिकैं रघुनाथ घुमायकैं फूलकी मालसों।
लालकि फेंट सों लैकें गुलाल लपेटगई अब लालके गालसो॥

लाला की गुलाल से ही लाला के गाल की मरम्मत करती, तब तो सरकार बहुत खिसियाने हुये और जोशमें आकर ब्रजबालाओं के ऊपर गुलाल फैंकने लगे। सबकी आंखों में अबीर भर गया और खेलने में कठिनता होने लगी तो लाचार होकर खेलका एक कानून बनाना पड़ा 'कि कोई किसी की आंख में अबीर न डाले' और इसकी एक कापी कृष्ण मंडली में भेजी गई।

खेलिये फाग निशंक ह्वै आज मयंक मुखी कहै भाग हमारो।

लेहु गुलाल दुहूं कर में पिचकारिन रंग लिये मंह मारो ॥
भावै तुम्हैं सो करो मोहि लाल पै पाँव परो जनि घूंघटटारो।
बीर की सौंह हम देखि हैं कैसे अबीर तो आंख बचायकेडारो॥

आप चाहे जहां पिचकारी चलावें परन्तु अबीर को आंखों से बचाकर डाला करें। मगर हमारे नट खट कब मानने वाले थे। कानून को रद्दी की टोकरी में फेंकदिया। और खूब रंग बरसाने लगे दोनों पार्टी रंग में शराबोर होगईं। प्रिया प्रीतम पर कुछ निराली ही झलक झलक ने लगी।

"गोरी के रंग में भीजिगो सांवरो,
सांवरे के रंग भीजिगी गोरी ॥

राधा की कृष्ण के सामने एक भी चाल कारगर न हुई। सखी मंडल को दुबारा ताकीद की गई, और कृष्ण को पकड़ने का पूरा इंतज़ाम किया गया, एक सखी ने उन्हे पकड़ने का बीड़ा उठाया और वह ख़म ठोक कर कहने लगी।

ठाढ़ी रहो न ढगी न मगी,
अब देखति हो कछु खेलनि ख्यालहिं।
गावन देवी बजावन दे सखि,
आवन दे इत नंद के लालहिं॥
ढाकुर ही रंग हौं रंग सों,
अंग बोरिहौं बीर अबीर गुलालहिं।
धूमर मैं अबहीं मैं धमार में हौं,
धंसि हौं धरि लैहों गोपालहिं॥

अबके एकही झपट्टे में मैं उन्हे पकड़ लाऊंगी तुम देखोमन ऐसा कह कर वह सखी आगे बढ़ी, और नट खट को पकड़ने का दाव लगाने लगी एक दम भीड़ में घुसकर आंखों से ओभल होगई।

देखना यह शोर सा क्या होरहा है, अरे रे! यह तो पकड़े गये सखियां घेरे हुई हैं आप निकलने की कोशिश में हैं मगर कुछ पार नहीं बसाती।

फाग के भीर अभीरन ते गहि गोविंद भीतर लेगई गोरी।
भाई करी मनकी पदमाकर ऊपर नाइ अबीर की झोरी॥
छीनि पितम्बर कम्मर से सुविदादई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कह्यो मुस्काय लला फिर आइयो खेलन होरी॥

सरकार पकड़े गये, और बुरी तरह पकड़े गये। सखियों ने खूब तंग किया। खूब जबरी पीताम्बर छीन लिया सखी का रूप बनादिया और तुर्रा यह कि गालों को लाल करदिया और चलते दफ़ा एक व्यंग बाण भी छोड़दिया।

"लला फिर आइयो खेलन होरी"।

छोड़ने की देर थी लला भला वहां क्यों ठहरने लगे? दुम दबाकर भागे और सीधे अपनी मडंली में पहुंचे। आजका फाग समाप्त हुवा। दोनों पार्टियां अपनेर घरों को चली गईं। हम भी विलम्ब समझ कर वहां से चलते बने। परन्तु सामने एक भंगड़ को देखा जो अभीतक कुछ गुनगुना रहा था—

बके संगहाल नंदलाल ओ गुलाल दोऊ,
दृगनि गयो जुभरी आनंद मढ़ै नहीं।
धोय धोय हारी 'पद्माकर' तिहारी सौंह,
अबतो उपाय कोउ चित्तपै चढ़ै नहीं॥
कहा करी! कहाँ जाऊं! कासों कही! कौन सुने,
कीजिये उपाय जामे दरद बढ़ै नहीं।
ऐरी मेरी वीर जैसे तैसे इन आंखिन ते,
कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं॥

(दुर्गाप्रसाद गुप्त)

भारतीय महात्मा श्री रांका बांका महा०

(ले० श्री माधवदास पुजारी)

जिन भारतीय महात्माओं का समस्त जगत यशोगान करता है वे यही श्रीमान रांकाजी और श्रीमती बांका जी श्री रामानुज की विशाल सम्प्रदाय में भगवान के भक्त और आचार्य्य हुवे। भविष्य पुराण में वेदव्यास जी वैश्वानर भगवान के अवतार आपको कहा है और आपकी धर्मपत्नी स्वाहा का अवतार श्री बंकणा नाम से थी। यथाः—

'आग्नीकृत युगे विष्णुस्तथा वैश्वानरोऽनलः।
द्वापरे वसु कांजातः कलौ श्रीरङ्कणो मुनिः॥
रंकणो नाम विख्यातो लक्ष्मीदत्तस्य वै सुतः।
बंकणा नाम तत्पत्नी बभुव च पतिव्रता॥

दक्षिण देश में चन्द्र भागा नदी के तीर पण्डरपुर नामक पुण्य क्षेत्र में वि० सं० १३४७ अगहन शु० २ गुरुदिने चित्रा नक्षत्र में श्री लक्ष्मी दत्त ब्राह्मण के भवन में श्री रंकणदेव का जन्म हुआ उसीपुर में वेदज्ञ हरिदेव के घर में वि० सं० १३५१ वैशाख कृष्ण ७ को श्री रंकणा जी की धर्मपत्नी श्री बंकणा जी का जन्म हुआ।

भारत भ्रमण व भक्त माल में लिखा है कि आप दोनों का वैराग्य इतन बढ़ा चढ़ा था, कि किसी से कुछ भी याचना न करते थे, और जंगल की लकड़ियां बेच कर जो अन्नादि मिलता था उससे भगवत् तथा महात्माओं की सेवा कर अपना निर्वाह करते थे। आपकी यह दशा देखकर भक्त नामदेव जी ने भगवान से प्रार्थना की कि हे श्री रांका श्री बांका जी गृहस्थ में रहते हुवे काष्ठ बेच कर अपना निर्वाह करते हैं। इसमें मुझे सन्देह है।

भगवान् ने कहा कि ये दोनों कभी भी किसी का द्रव्य ग्रहण नहीं करते हैं यदि तुमको विश्वास न होतो चलकर अपने नेत्रों से देखलो। यह कह कर भगवान् नामदेव को साथ ले वनमें गये और जिस मार्ग से वनमें गये और जिस मार्ग से श्री रांका जी श्री बांका जी लकड़ी लेने जाते थे उसी मार्ग में मोहरों की थैली डालकर आप दोनों चले गये। इतने में वैराग्य धनसे गर्वित श्री रांका जी आये मार्ग में उस धन समूह को विष समान जान अपनी धर्मपत्नी श्री बांका जी को पीछे आती हुई देख उसपर धूलि डालदी। पति के मन का अभिप्राय जानने वाली शिर झुका पत्नि रांकाजी से बोली। आपने झुककर क्या किया ? आपने हंस कर कहा, हे प्रिय ! यहां मार्ग में अनर्थकारी द्रव्यपर से तेरामन न चलजाय इस कारण मिले हुवे धनको धूली में छिपादिया है।

साध्वी श्री बांका जी बोली। महाराज ! आपके मनमें अभीतक धन का ज्ञान बना है। धूल पर धूल डालने का प्रयोजन था।

यह बात सुन योगीराज श्री रांका जी प्रसन्न हो बोले, मुझे तो सब रांका कहते हैं परन्तु आज मैंने जाना कि तू सचमुच बांका है। यह दृश्य देख भगवान ने नामदेव से कहा देखा मेरी बात सत्य निकली ! फिर नामदेव ने हार मानी। प्रभु बोले ! यदि तुमको इनकी सेवा ही करनी है तो चलो वनमें सूखी लकड़ियां इकट्ठी करदें। भगवान और नामदेव ने ऐसा ही किया। जब पत्नी सहित श्री रांका जी वनमें आये तो, पराई लकड़ियों को इकट्ठी पड़ी हुई समझ कर न लिया और खाली हाथ घर आये। पुनः विचार करने लगे, आज ही मोहरें देखी थी उसका यह फल हुआ, जो आज लकड़ी भी न प्राप्त हुई। यदि मोहरों के हाथ लगा देते तो न जाने क्या होता भगवान और नामदेव जी लकड़ी का भार और द्रव्य उनके स्थान में लाकर डालने लगे तो योगी रांका जी कहने लगे यह कौन पुरुष मेरी उपासना में बाधा डालता है। ऐसा कहते हुए श्रीमान रांका जी श्रीमती बांका जी अपने स्थान से बाहिर भागने लगे तो भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें छाती से लगा लिया। तब भक्त पत्नी सहित उस अत्यन्त सुन्दर मनोहर स्वरूप को देख उन्मत्त होगये और उन्हें कुछ भी अपने शरीरों की सुध नहीं रही, बादमें श्री रांका जी महाराज ने भक्त नामदेव को कहा कि ऐसे कोमल शरीर सुन्दर स्वरूप को वनमें लेजा कर सूखा, काष्ठ तुड़वाना आदि तुमको किस प्रकार अच्छा लगा था ? पुनः अंग में भोज पत्र धारी श्री रांका जी श्री बांका को एक २ वस्त्र भगवान देने लगे तो उन्हें दोनों को बड़ा भारी बोझ मालुम हुआ। भगवान का आश्रय होने पर उसे प्रसाद जान लेकर शरीर में धारण किया। और भगवान की आज्ञा से अमृतमय वाणी से लोकोपकार करने लगे।

श्री रंकण मुनि चरिता मृत में लिखा है कि एकबार आपदोनों ने वनमें जाकर भयंकर सिंह को हिंसा छुड़ाने का उपदेश दिया और उसे भक्त बना दिया, तथा एक धनाढ्य वैश्य को लूटते हुए डाकुओं को उपदेशामृत से उन्हें हरि भक्त बनादिया। आप के अलौकिक अद्भुत चरित्रों को देख जो शैव शाक्त धर्म के अभिमानी आपके परिवार के लोग आकर क्षमा मांगने लगे। और आपदोनों को ईश्वर शक्ति का अवतार मान आपसे वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् मुनिराज ने उनको यथाश्रिम धर्म के अनुकूल मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया।

तदनन्तर आपदोनों द्वारका को चल पड़े। मार्ग में मरणासन्न एक राजा को जीव दान दे उसे सपरिवार वैष्णव बनादिया। राजा ने अपनी नगरी को पावन कराने की प्रार्थना की पर योगीराज वहां न जाकर द्वारका गये और दूरसे मन्दिर की ध्वजा को देख शरीर में आनन्द का पार नहीं रहा, आंसू बहाते हुए शीघ्र ही मन्दिर में जाकर भगवान को आलिंगन करने को दौड़े कुछ काल वहां निवासकर भगवदनुभव का आनन्द प्राप्तकिया।

एकदिन मंगल कीर्तन करते समय वैष्णववृन्द में हरि भगवान ने श्री रंकण मुनिराज को अमृत भरी तुम्बिका दी। आपने भगवान का अभिवादन किया। हरि अंतर्ध्यान हुए। तुम्बिका को वहां ही त्याग तुष्कट वृन्दावन होते हुए बद्रीनाथ को गये। वहां दर्शन करके अपनी सुध भूलगये। कुछ काल वहां हरि नामोच्चारण कर वहां से भारत यात्रा को चल पड़े।

एकबार आपने कांचनपुर नगर में स्वयं प्रज्वलित अग्नि से साक्षात् कार हो नास्तिकों के

समुदाय में प्रबल परिचय देकर उन्हें भगवद्भक्त बनादिया।

श्री सम्प्रदाय का विशेष तत्त्व प्राप्त करके आप भगवत्प्राप्ति के लिये प्रेम में विह्वल होगये। पुनः महाराष्ट्र दक्षिणदेश के लोगों को व कुटुम्बियों को श्री वैष्णव धर्म की दीक्षा दी और जब हरि वियोग न सहागया तब अग्नि के अवतार भगवान् श्री रंकण मुनि और स्वाहा का अवतार भगवती श्री बंकणा देवी दोनों एक साथ वि० सं० १४५२ वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को श्री वैकुण्ठ धाम को पधारे।

आपदोनों महापुरुषों का विस्तार पूर्वक वर्णन "श्री बंकणापति श्री रंकणमुनि चरितामृत" में मिलता हैं यह ग्रन्थ ब्यावट श्री रंकण मठ से प्राप्त हो सकता है। आपकी विशेष त्याग निष्ठा होने से आपके पूरे साहित्य व स्थानों का पता नहीं चलता।

आपके कुटुम्बियों में प्रधान सत्पुरुष आल्हादमुनि, लक्ष्मी प्रपन्न मुनि गोपालदेव, सुमति, श्री भगवद्दत्त, महाभाग, भीमदेव, बलभद्र, चतुरदास परमानन्द जी आदि हुये हैं। जिन्होने श्री वैष्णव धर्म का बहुत प्रचार किया है।

श्री रंकणाचार्य महाराज के पुत्र आल्हाद मुनि की परम्परागत २४ वीं पीढी में महन्त सदारामजी हुये, जिन्होंने ब्यावट के नगर वासियों में कथा, कीर्त्तन भगवदुत्सव तथ तपबल से विष्णु भक्ति का श्रोत बहा दिया।

जिससे प्रसन्न हो श्री १००८ श्री मज्जगत गुरू काञ्ची प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर श्री मदनन्ताचार्य जी महाराज ने दिग्विजय करते समय श्री रांका बांका महाप्रभु मठ में पधार कर आपको बहुमान से सम्मानित किया है आपकी धर्म पत्नी श्री लक्ष्मी देवी के वैकुण्ठ पास होने के एक मास बाद आपने भगवद् वियोग की असह्य ज्वाला को न सहन कर वि० १९७७ के वैशाख शु० ११ को नारायण का स्मरण करते हुए परंपद प्राप्त किया। आपकी अन्त्येष्टि क्रिया में आपके पुत्र गजेन्द्राचार्य जी ने ब्यावर के समस्त साधु ब्राह्मण समुदाय को उत्तम पदार्थों एवं दक्षिणादिसे से सन्तुष्ट किया। बहार आये हुए साधु वृन्दों के एवं १२ महन्तों की पधरावनीयें हुई। श्री मज्जगद्गुरु महाराज के पदाभिषेक के लेखानुसार गजेन्द्राचार्य जी उत्तर पीठाधिपति बनाये गये। आप संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि के अच्छे विद्वान् है। आप ब्यावट की समस्त संस्थाओं के साथ सहानुभूति रखते हैं। इसपर भी एक व्यक्ति अपने आर्य समाजी व्यसन से श्री रंकणामठ की भूमि के कुछ भाग पर हस्ताक्षेप करडाला, नौ वर्ष तक अभियोग चला, अन्तमें भूमि का भाग मठ को पुन विजय के साथ मिलगया, आपका सारा समय भगवद्भजन एवं वैष्णव सेवा तथा शास्त्रावलोकन में व्यतीत होता है। इतिशुभम्

भजन

आजारे मोहन आजा
लीलामय लीला मोहे लीला दीखाजा ॥टेक॥
शुभ गीता का ज्ञान सुना जा,
कर्म वीर बनना बतला जा।
गीता ध्वनि सुनाजा ॥
अभिमानी का मान घटा जा,
निरंकुशों की शान घटा जा।
विमल ज्ञान भण्डार लुटा जा,
प्रेम पीयूष पिलाजा ॥ २ ॥
भारत को स्वतंत्र दिला कर,
दास प्रथा का अंत करा कर।
मातृ भूमि को धीरज देकर,
कुछ तो दुख मिटा जा ॥ ३ ॥
भीख मांगना भारत छोड़े,
पाप कर्म से मुख को मोड़े।
सत्य धर्म से नाता जोड़े,
जीवन ज्योति जगा जा ॥ ४ ॥
गोकुल वृन्दावन में आकर,
दधि माखन का चोर कहाकर।
दूध दही का स्रोत बहा कर,
ऊधम फेर मचा जा ॥ ५ ॥
वह प्राचीन उमंग नहीं है,
निर्मल प्रेम तरंग नहीं है।
सच्चा सुख दिखता है नहीं है,
किंचित् दया दिखा जा ॥ ६ ॥
मांगें हम लक्ष्मी मत देना,
यश वैभव मांगें मत देना।
केवल मंजुल रूप दिखा कर,
किंचित् हृदय जुड़ा जा ॥ ७ ॥
माधव जो तू नहीं आवेगा,
इस प्रकार जो तरसावेगा।
निश्चय ही तू पछतावेगा,
प्रणयी नेह निभाजा ॥ ८ ॥

(२)

छवि दिखलाजा प्यारे मोहना,
मैंनू बंशी दी तान सुनाजा ॥ टेक ॥
तैनूं ब्रजदीयां नारियां प्यारि वे,
ओत्थे हुड्डियां कुब्बियां नारियां वे।
कभी भुल्ल के पंजाब विच आजा मोहना ॥ १ ॥
तैनूं मेरी जेहयां बहतेरियां वे,
पर मैंनूं इक्क टंगा टेरियां वे।
मेरी ततड़ी दी प्यास बुझाजा मोहना ॥ २ ॥
तू घर आ मेरे ब्रज वासिया वे,
बन्दी तेरे दरश दी प्यासियां वे।
ऐसी प्यासी नू पानी पिलाजा मोहना ॥ ३ ॥
मेरे ऐबों पै रुख ना दे साइयां वे,
मेरी माफ़ कर सब ही बुराइयां वे।
चरण दास नू पार लगा जा मोहना ॥ ४ ॥

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।)
३. गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४. वेदोपनिषद्		।)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६. ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	=)
९. सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०. शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥
११. शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२. शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३. सारसंग्रह	"	।)
१४. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१५. मनुस्मृति सार	"	≡)।
१६. भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१७. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१८. भगवदंक	"	॥।)
१९. गवांक	"	१)
२०. महात्मांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिये।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।